एक गधे की जनमकुंडली

आलम शाह खान

क्रम

एक
गधे की
जनमकुंडली

एक गधे की जनमकुंडली

गणेसा ने काम मांडने से पहले धरती को नमन कर माटी को माथे से लगाया। फिर 'जै बजरंग बली' के ऊंचे बोल के साथ हवा में तानकर उसने जो गैंती मारी तो टन् से लोहा पत्थर पर जा बोला। नन्ही चिन-गारियां चमक उठीं और गणेसा का उछाह बुझ गया, गैंती पर उसकी पकड़ ढीली हो गई।

उसे अपने हाथ-हिम्मत पर खुद ही अचरज होने लगता। विते भर उसका बूता और पर्वत तोड़ने-ठेलने का ठेका। बड़े कारखाने के लिए कांटेदार तारों से घिरी लम्बी-चौड़ी धरती के पसार में उभरे 'दो जानवरों बिरोबर ऊंचे टीमें' को तोड़-बखेर कर उसके मलवेमाटी को वहां से नापेद करने की हौस, वह भी चुहिया-सी चंदो और चार कम दस जिनावरों के बूते।

पहले तो इलाके में नये-नये आये पंजाबी ठेकेदार की समझ में गणेसा 'ओड़' की यह जुगत नहीं जमी। पर जब उसने 'ओड़ और पहाड़ तोड़' की दुहाई देते हुए अपने को माटी-मार मानुस बताया, साथ ही दूसरे मजूरों ने भी इस बात की हामी भरी तो ठेकेदार ने बुलडोजर का काम विता भर गणेसा और उसके छः गधों पर डाल तसल्ली कर ली। गणेसा ने ओछी बोली पर ठेका उठाया था। उतने पर तो बुलडोजर का किराया ही नहीं पूरता। फिर 'टीमें' की तरफ नींव खुदवाने में अभी महीने दो-एक की देरी भी तो थी।

आंचल में आस लिए मक्का के रूखे टिक्कड़ गणेसा के आगे सरकाती तब चंदो ही तो चिहुंकी थी—'भला गधों के पीछे चलते-डोलते कहां तो पहुं-

चोगे, गारा-माटी तोडो-खोदो और फिर सिर पर टोकरी तोल जहां-तहां धरती के गड्ढे भरने से तो पेट का गड्ढा नहीं भरता···कुछ और जुगत विचारो ना ?

—ए···कौन जुगत-जुडाऊं, जे बाप-दादों का किया-दिया रुजगार है···नवा धंधा कैसे जोड़ूं-जुटायें ?

—अरे ! नाई-धोबी, कहार-कलाल, बदल गये, अपने ही धंधे को चमका दिया···दूजे धंधे धारने को नो बोलती···ओड के ओड माटी तोड बने रहो, चलो इसमें ही बढ़त की सोचो। अब तो बप्पा के तीन जिनावर और आ बंधे हैं अपने खूंटे पे। चंदो ने मक्की के आटे को सानते हुए बात को गमक दी।

—तेरे बाप के जिनावरों की छोड़···कल तेरी मानुस-खोर नयी मां आ मरेगी और रो-बोलकर खिलाये-पिलाये जिनावरों को खोल ले जायेगी।

—मेरे बाप पिहर की चलने भर की देर है, तुम कड़ुआ तोलोगे ही··· मैं जानूं··· जब की तब देखेंगे। आज तो हमारे कने चार कम दस जिनावर हैं···भला कब तक दिन-दानगी पर माटी ढो-ढोकर ठेकेदार का भरना भरते रहोगे···अब तो हम तीन से चार भी तो हो जायेंगे। इतना कहकर चंदो ने गुजलाए आंचल को ठीक कर अपने आपे को उसमें ढाप लिया।

—वो तो है ही···पर दिन-दानगी न करूं तो मजूरी छोड़ ठेकेदार बन जाऊं···बोल ?

—अरे, तो ठेकेदार के सिर पै सींग होवे, वो अपने काम मे हुसियार, हम अपने काम में बत्ते। तुम आज उस ठेकेदार से पूछ तो देखो के उस टीमे को तोड माटी फेंकने का ठेका हमे दे दे, हां करे तो हम दोनों माथा जोड़ हिसाब बिठा लेंगे के रोजीना की दिन-दानगी से कित्ता मिलेगा और ठेके मे कित्ते दिन खरच के कित्ता पायेंगे···जिसमें दो पैसे बत्ती मिलेंगे वोई ठीक।

और यूं चंदो के चलाये चलकर गणेसा ने टीबा तोड़ माटी फेंकने का तीन सौ रुपये का ठेका उठा लिया था। पर गैंती की पहली ही मार पथराई माटी की मोटी परत को झुरझुराकर रह गई तो गणेसा का माथा

ठनका। दूसरी मार ठीक से न सधने पर उसने हिया-जोड़-सास तोलकर तीसरा भरपूर आघात किया फिर भी दो मुट्ठी गारा धसककर रह गया और टन् को टकार के साथ जो चिनगारी फूटी तो गणेसा की आख की चमक बुझ गई। उसने गधे से सटी, हाथ मे फावडा लिए पास खडी चदो को खाऊ नजर से देखा और फिर धना-धन गैंती तोल धरती तोड़ने मे जुट गया। ठीक ही कड़ियल जमीन थी। एक लम्बे दम की दुहरी सांस खरच के भी गणेसा माथे पै पसीना तो ले आया पर दो टोकरी मिट्टी नही उकेर सका। पसीने के तोल मे मिट्टी को कम देख चंदो पल भर को भीतर से हिल तो गई पर तभी संभल उसने फावडे को तिरछा कर धरती पर बजा दिया।

गणेसा के पसीने के साथ झरते बिन वानी के बोल—अब क्या होगा? को आंखों-आंखो मे समझकर वह कह गई—मारी टेकरी इत्ती कडियल नी, इत-उत बित्ता-बालिस हमली-फंसली है—तुम सुस्ताओ, लाओ मुझे दो गैंती, मैं जुटती हूं।

—अरे! परे हो···चार चोट पे सुस्ताने लगे तो हो गयी ठेकेदारी। गणेसा ने कहा और उसके हाथ को झटक दिया।

अब फिर हैं···हां···हैं···हां···की उथली लय के साथ सर पर उठती और पैरो मे गिरती गैंती की खट्···घस्म की घमसान चल पडी। उधर चंदो उभरी-बिखरी मिट्टी भर-भर टोकरी गधों की पीठ पर लगे गुनतो मे भर रही थी।

घंटे भर की लाग के बाद कही चार कम दस गधे लादकर चंदो ने उन्हें घेरने की हांक लगाई तो गणेसा ने उसे हाथ से रोक, आंख भर देखा—गधे भी लदे थे और चंदो भी···पिंडली तक ऊंचे घघरे मे खुसे आंचल में ढंपा उसका पेट सफ्फा उभरा दीखा तो उसे ऐसा लगा जैसे चार कम दस नही तीन कम दस जिनावर लदे जा रहे हैं।

दो सुट्टे मार बुझी बीडी को सर पर लिपटे हाथ भर के गमछे मे खोंस गणेसा फिर माटी तोड़ने मे जुट गया। उसने दो 'चवे' भी नही तोडे थे कि चंदो ने खाली गधो के साथ गणेसा को आ घेरा और हुलसती हुई बोली—लो, हौंसले वालों का हाली वो ऊपर वाला है···वो जो पानी की टंकी के

पीछे बड़ा खड्ड है, वही गैर आयी माटी⋯लगे हैं जैसे आधा टीमा उसमें ही पुर जायेगा।

उधर जब गणेसा के ठेकेदार बनने की बात चंदो की नयी माँ के कानों पड़ी तो वह जल-भुनकर रह गयी—अरे-अरे लूले डूंगर लांघने लगे⋯कल दो पैसे जो हाथ में आ गये तो वो हमें कब गिनेंगे। और वह तुरंत गणेसा के बाड़े-बसघट के पास जा खड़ी हुई।

—चंदो हो—अपने जिनावर ले जा रहे⋯तेरा बप्पा रात-रात भर खासे-खपे⋯जिनावर किराये पर चढा उसकी दवा-दारू जुटाना है। इतना कह वह बाड़े में धंसी और जिनावरों को खूंटे से खोलने लगी।

—माई! थम⋯सुन तो। ठेका उठाया है—इन जिनावरों के बुते⋯ इनका किराया जो और लोग दें, हम भर देंगे। पर माई ने एक न सुनी। उसके दूर होते बोल आये—'भाई-जमाई से जिनावरों का किराया लेते हमसे नहीं बनेगा।' और उसने हाक लगा दी। अब गणेसा के बाड़े में तीन जिनावर रह गये।

ठेकेदार ने जब गणेसा को तीन गधों के साथ काम पर लगे देखा तो वह बिदका। पहले ही काम की चाल सुस्त है तीन गधे कहा छोड़े?⋯ यूं काम चलेगा तो तीन महिने में पूरा नहीं होने का⋯अठवाड़ा टूट गया और तूने अस्सी पग जमीन नहीं तोड़ी⋯पखवाड़े बाद तो यहां नीम खुदनी है⋯ कारीगर जुड़ते हैं।

—ठेकेदारजी, क्या करें। हमारी सास के जिनावर थे⋯वो आज खूंटे से खोल ले गयी⋯तुम फिकर न करो कल से मैं किसना को भी काम पे लगाता हू⋯आखिर तो आठ बरस लांघ गया।

—तीन गधों का बदल किसुना? भला वो नन्ही सी जान क्या काम सुलटा पायेगा।

—मालिक! दीखने में छोटा दीखे है⋯पर हम लोगों के हाथों में

मारे नही रहते'''वह भुनभुनाई और लदे गधों को वापस उधर हकाल ले गई।

—अरे फिर ले आई अपने सगतो को ! मिट्टी लदे गधों को दूर से ही देख मुन्शीजी झुझलाये—बोला न, उधर मोटर घर के गड्ढे में जा गेरो।

—मुन्शीजी मेरे बीरा ! गड्ढा ही तो भरना है'''चाहे ये भरो, चाहे वो'''

—पर हां, सब अपना-अपना गड्ढा भरने की बात सोचते हैं'''इधर का गड्ढा भरने से उस ठेकेदार का उधर का गड्ढा खाली जो रह जायेगा।

—आप भगवान हैं'''इधर मिट्टी गेरने से तनी हमे नजदीक पड़ता है, और तो कुछ नी'''हां, ये पेसगी के तीस रुपै जमा कर लें। चंदो ने आगे बढ झुककर नोट मुन्शीजी की तिपाई पर धर दिये। चश्मे से आंखें बाहर चौड़ाकर उन्होने उसे जो घूरा तो चंदो ने अपनी खुल-खुल अंगिया मे हाथ डाल दो रुपये का नोट उनके आगे और सरका दिया—हुजूर के पान-सुपारी के लिए'''गरीब लोग हैं, क्या करें ! वह मरी माई मार गई''' मुन्शीजी ने आख की आच समेटी तो चंदो फिर घिघियाई—तो मिट्टी इधर गेर दें ?

—ना-ना'''ठेकेदार देख गया है, सफा मनाई है उसकी'''कल देखेगा तो तेरे साथ हमारे भी छुट्टी, इतना कह मुन्शीजी ने पहले दो रुपये का नोट अपने सूती कोट की भीतरी जेब में धरा फिर तिपाई पर रखे नोट दराज मे फेंकते हुए बोले, 'तीस रुपये की रसीद दोपहर को ले जाये, गणेसा से बोल देना', चंदो मुह तकती रह गयी। कुढ़कर बोली—जे फेरा तो इधर ही खाली करू हू'''अगली बेर से उधर को जायेंगे। दो रुपये के बूते चंदो ने मुन्शीजी को इतना पतला तो कर ही दिया।

रीते गधे जब काम की ठौर आ खडे हुए तो हुलास भरे हिये से गणेसा ने पूछा—तो मना लिया उसे'''अब तो इधर दूर नही जाना ?

—नही ठेकेदार का हुक्म है'''क्या हुआ पांच पंद्राह पग आगे सही''' उधर ही गेर देंगे मिट्टी'''ऊंखल मे सिर दिया तो धमाके से डर ! चंदो ने आंखें मसलते हुए दरसाया कि वह असुआ नही रही, कुछ गिर गया है आख मे। उसने पहले तो फावड़ा पकड़ा फिर उसे धकेलकर गैंती थाम ली—दो

छोड़े ठंडा पानी आंख-मुंह पर मार रोटी खा लो···अब मैं जुटती हूं। इतना कह उसने हवा में गैंती तोलकर जमीन पर मारी तो मारते ही चली गयी। थोड़ी ही देर में उसकी सास फूल गई, इसके घड़े से निकल आये पेट पर मिट्टी की परत जम गई। उसकी हिम्मत पर गणेसा को तरस आ गया पर गुस्सा कर बोला—रोटी भी खाने देगी···खबर है दो जी से है···गैंती के धमाके से इधर-उधर हो गया तो···

—तो कौन ससार सूना हो जावेगा···ठेकेदार का काम रुक जावेगा···एक माटी मार मिनख···एक गधा नही तो चार मोटर मशीनें आ खड़ी होंगी और···तभी उसकी निगाह मे दो रुपये का नोट कौंध गया।

—साबुत कलजुग है साबुत···धोले कपड़ों में बटमार घूमे है चौ तरफ—उसने गहरी सांस छोडते हुए कहा।

—बात को उलझायेगी···सीधे बोल क्या हुआ ?

—होना किसका···वो तीस रुपये मुन्शीजी को दे आई—पेसगी के···रसीद दे देंगे। गणेसा ने उसे आखों में जो तोला तो वह पहले ही बोल दी—और आड़े वखत के लिए जचगी-मांदगी के लिए, जोड़ रखे थे, सो भर दिये···चौथाई आधा काम निपटने पे हमें भी तो पेसगी ठेकेदार से मिलेगा···जे भी तो कायदा है।

—तू कायदा कानून खूब जाने···फिर तू ही जाना, रात-बिरात को और लाना कहां से जब हमारी कोख खुले—हम टाल-मटोल लगा रहे, जे धन्ना साहूकार की जनी पहुची और दे आयी जमा-जत्था···और मरखने मुन्सी को कुछ नीं दिया ?

—तुम्हारी गुद्दी में अकल भीत है···पर मैंने सोचा रकम पाकर नरम पड़ जायेगा और उधर ही मिट्टी गेरने का लग्गा बना रहेगा···पर मुन्सी दो रुपये भी डकार गया।

गले की सूखी घाटी को छाछ-पानी से गीला कर जब तक गणेसा टुक्कड़ निगलता रहा, चंदो ने इतनी माटी खोद ली कि तीन गधे लद जायें। उसने तीनों गधों के गुनते ठोस-ठोस के भर दिये फिर भरपूर टोकरी अपने सर पर रखी और दूसरी टूटी टोकरी में फावड़े भर मिट्टी उंडेलकर किसना के सर पर धर दी।

गणेसा ने पानी पीकर डकार ली तो उसका हिया बढ़ाने की ढब में चंदो ने पूछा—लो, हो गये पाँच काम दस जिनावर—एक ही तो घटा···उसकी पूर्ति गुनतों में ऊपर तक ठुंसी मिट्टी से हो गई···अरे, हिम्मत बिन किस्मत नहीं। उसने लड़खड़ाते किसना को सहारा दिया और होंठो में मुस्कान की बाक भर आगे बढ़ गई।

सचमुच और दिनों की तोल में आज काम की चाल तेज रही। एक तो जमीन उतनी कड़ियल नहीं आई, और ऊपर से चंदो ने बिजली की-सी फुर्ती दिखाई। किसना भी मां के साथ दिन भर जुटा रहा। उधर दूसरे कामों पर लगे मजूर-मजूरनियां पाच बजते ही फारगत ले घरों-टोलों को चल पड़े थे तब भी तीनों काम पर जुटे थे। जब सूरज ऊब-डूब होने लगा तभी उन्होंने अपने लत्ते झाड़े और काम समेटा। छप्पर-ओटले पहुंचते-पहुंचते अधेरा हो गया। किसना तो जाते ही कटे पेड़ की तरह धरती पर पड़ गया और गणेसा ने जो छप्पर के बांस का टेका लिया तो पसर ही गया। चंदो जिनावरों का सानी-पानी करके लौटी तब तक दोनों बाप-बेटों की बजती हुई नाक जवाब-सवाल में डूबी थी।

थक तो चंदो भी गयी थी पर उसने झटपट आटा साना, चूल्हे में उपले चुने और अधमरी चिन्गारियां टटोल फूंक मारकर छप्पर में धुआ ही धुआ भर दिया। चंदो चूल्हे में फूंक मारने के लिए झुकती कि उसका उभरा पेट दबने लगता और भीतर कोई हिलहिल दुख जाती। एक पल उसने सोचा, कितना अच्छा होता पेट का बोझ धरती के किसी गड्ढे में रख देते और साल-छः महीने में उसे दुलारकर ले आते। यह बचकानी बात उसके माथे में आयी कि उसकी आंख हारे-थके गणेसा पर टिक गयी—इस भोले मजूर को मैंने ठेके की सूली पर चढ़ा दिया···पिट गये तो···खा ही जायगा मुझे। चंदो के आपे में झुरझुरी-सी दौड़ गयी—और किसना भी तो थकके अधमरा हो गया है···पर यूं थकने-हारने से तो काम चलने का नहीं···अब तो पेसगी रुपया भी भर दिया है···दिन में बुलाकर मुन्सी ने इनसे कागज पर अंगूठा भी लगवा लिया···अब छूट नहीं···काम तो पार उतारना ही है···

किसना दो दिन हसकान होगा, तीजे दिन रबत पड़ जायेगी···फिर अभी से पसीना पीना नही सीखेगा तो कौन सा बैठी है जो दूध की नदियां उंड़ेल जायेगी उसके मुह में···सोचते-सोचते चंदो जाने कहां चली गयी और उसे भान ही नही रहा कि जली हुई आग फिर धुआं देने लगी है। उसने बुक्का फुलाकर यास की फुंकनी में जोर की फूक मारी तो आंच चूल्हे में दिपदिपाने लगी। तभी उसने हथेलियों की ओट आटे के घेरे बनाये और साधकर उन्हें चूल्हे चढ़ी ठिकरी पर थाप दिया। दो टिक्कड़ सेंककर उन्हें चूल्हे से लगा खड़ा कर दिया। गज भर दूर छितरे प्याज की गांठ को चिमटे से खींच पास कर लिया और आंखों में ममता के डोरे उजालकर पुकारा—सुना··· हो किसना···उठो किसनलाल लो खा लो। किसना कुनमुनाया और गणेसा ने करवट बदलकर आंख खोली।

अगले तीन दिन से इतना काम हुआ कि देखकर ठेकेदार दंग रह गया। उधर गणेशा को भी आस बंधी कि 'भोले शम्भू' ने चाहा तो सब चुटकियों में सुलट जायेगा···आधा ढूह ढाने को है और बाकी आधा बस गया समझो। पर ढूह के टूटने के साथ ही वे तीनों माटी खोद मानुष ही नही जिनावर भी टूटने लगे। चंदो जिस फुर्ती से जिनावरों को लादने और खाली करने में जुटी उसी हुल्लास और हिम्मत से गणेसा माटी तोडने में लगा रहा। मा-बाप को यू जानमारी करते देख किसना भला कब पीछे रहने वाला था। पर अब उसका मुंह अन्नी-सा निकल आया, बदन की हड्डियां दीखने लगी। गणेसा भी सुतकर धूप मे झुलसा गया। चंदो को पैर भारी थे ही अब उसकी हालत और भी पतली हो गई। उसका जी मिचलाता पेट मुंह को आने लगता और वह गणेसा से सब छिपाकर दूर कुछ उगल देती। इधर डेढा बोझ ढोते-ढोते जिनावर भी सूख गये। उनकी चाल सुस्ता गयी—आंखों मे कौध भर गयी. उनमें छोटे कानों वाली गधी 'मोड़ी' तो बडी बेजोर निकली। चार पग चलती और घुटने टेक देती। चंदो उसे उठाती खडी करती खुद थम जाती। अब कभी मोड़ी गुनता गिरा देती तो कभी लदान से दूर जा अड़ जाती। कम लादने पर भी आज वह जो पसरी

तो फिर कब उठी ? चदो ने उसे खडा करने की जी तोड़कर जान लगाई तो उसने जो दुलत्ती झाड़ी तो उसकी कोख में लगी। चंदो को नीले-पीले दिखने लगे फिर उसकी आख बन्द हो गई। चदो की हालत देखकर गणेसा को जो कोप चढा तो उसने दूर से ही गैंती तोल उसकी तरफ मारी। ती-भौ''' ती-भौ की दर्दली भौक हवा में घुली और मोड़ी धरती पर फैल गयी।

फावडा-टोकरी पैरों से छितराकर गणेसा ने लपककर चंदो को संभाला और उसे जैसे-तैसे गधे पर चढा छप्पर में ला डाला। उसे लेटने-बिठाने जैसा करके हल्दी तेल का लेप मालिस की। चंदो को राहत मिली तो आँख खोलते ही पूछा—काम बढा दिया'''मोड़ी गाभिन थी विचारी। तभी किसना एक जिनावर के साथ ओटले के घेरे में घुसा। बोला—बापू मोड़ी तबसे पडी है वही, उसके मुह से झाग निकल रहे हैं। गणेसा ने सुना और सर पकड़ लिया।

रात को चंदो का शरीर फिर मादा हो गया—उसका घघरा भीग गया। जगत बुआ ने भोत जुगत की पर कुछ न बना। वह डॉक्टर-वेद पर आकर टिक गयी। बोली—थोड़ा पैसा जुटाओ और किसी समझदार को बुलाओ '''पूरे दिन पे चोट लगी है।

छप्पर ओटाले क्या धरा था ? इधर तो चदो मांग-तांगकर दिन टालती जा रही थी। वैसे काम इतना निबड गया था कि कुल में से चौथाई रकम के वे हकदार हो गये थे। इसी के सहारे चंदो ने उधार की थी।

जैसे-तैसे रात कटी और टेम पर वह काम की ठौर जा पहुंचा पर काम पर जुटा नही। मुन्सी ठेकेदार की बाट जोने लगा। गणेसा तय करके आया था कि और कुछ न हो तो वह अपने पेसगी जमा तीस रुपये ही निकलवा लेगा चाहे उसे ठेके से हाथ ही क्यों न धोना पड़े'''उसकी इतने दिनों की मजूरी जाये तो जायें पर उसे आज रकम लेनी ही है। पर आज वहा कोई नही था, बस मजूर काम पर चढ़े थे। दफ्तर वालों ने आज छुट्टी रखी थी।

वह मरे मन और खाली हाथ घर लौटा। देखा जगत बुआ के चेहरे

की झुर्रियों में पसीना चुहचुहा आया है। घबराती हुई बोली—पूत बहुत जा रहा है—अस्पताल ले जाये बिना काम नहीं चलेगा। वह फिर भीतर हो गई।

गणेसा सर पकड़कर बैठ गया। पर दूसरे ही पल पास बंधे दो जिनावरों में से एक को खोल उसकी रस्सी तानता हुआ झट बाड़े से बाहर हो गया।

आधे घण्टे बाद जब वह लौटा तो उसके हाथ में बीस रुपये का कड़क नया नोट था—जैसे-तैसे उसने गोविन्दा धोबी को अपना जिनावर रहन रखने पर राजी कर लिया था। सानी-पानी गोविन्दा का बदल में वह जिनावर को जैसे लादे, काम में ले। पखवाड़ा टले गणेसा रुपया लौटा देगा और अपना जिनावर ले जायेगा।

छप्पर की रोक बजी तो गणेसा ने बीस का नोट आगे कर दिया। धुआं नहीं किसना था। बोला—माई की हालत बहुत बिगड़ गयी है··· अब ? गणेसा ने सुना और माथा नीचे झुका धम से जहां का तहां बैठ गया। उसकी अंगुली में बीस रुपये का नोट खुला था। पास बंधा जिनावर अपने मालिक को सूंघ रहा था कि उसकी थोथ से नोट छू गया। पल छितराने से पहले नोट गणेसा की उंगली से सरका और वह सम्भले-संभले कि नोट जिनावर के थोबड़े में समा गया। गणेसा बौखलाकर उठा और भरपूर जोर लगाकर उसका मुंह खोलने में जुट गया। मुंह खुला तब तब नोट जिनावर के पेट में जा चुका था। अब गणेसा की आंख में खून उतर आया और वह पास पड़े सोंटे को उठाकर उस पर पिल पड़ा। सोंटे की मार से जिनावर खूंटा उखाड़कर भाग खड़ा हुआ। गणेसा चंदो की चीख-पुकार को भूल गया और सोंटा लिए जिनावर के पीछे भाग दौड़ा। गणेसा पागल की तरह दौड़े चला जा रहा था। अब उसने सोंटा फेंक दिया। कोई आधे घण्टे की भाग-दौड़ के बाद गधे को पकड़ पाया। उसकी रस्सी हाथ में आते ही उसने हांक लगायी और उसे जानवरों के अस्पताल की तरफ ले दौड़ा।

जब उसने अस्पताल पहुंचकर गधे के बीस रुपये का नोट निगल जाने की बात कही तो सफाई करता हुआ महतर, उसके बच्चे ठट्ठा मारकर हंस पड़े। आज गांधी-जयन्ती थी—छुट्टी का दिन। अस्पताल में कोई

नहीं। अहाते में रहने वाले कम्पाउण्डर से उसने चिरौरी कर जिनावर को हलका-पतला जुलाब देकर उसका उदर खाली करने की बात कही तो कम्पाउण्डर हसा और हसता ही चला गया। उसके पेट में बल पड़ गये। 'दया करो बाबू'''जल्दी नहीं तो मेरा नोट गल जायगा।' गणेसा ने आखों मे आसू भरकर उसके पैर पकड़ लिए तो वह पसीज गया। उसने बांस की नाल से ढेर सारी दवाई गधे के मुंह मे उडेल दी और उसे घण्टे आधे घण्टे बाट देखने को कहा।

गणेसा गर्दन झुकाये पास खड़े गधे का यूं मुंह ताक रहा था जैसे भगवान से अपनी मनौती मनवा रहा हो। गधा अनमना था—एकदम बेहिल। उसे उस जानवर की सूरत मे कभी ठेकेदार का चेहरा दीखता तो कभी मुन्शी जी का'''गरीब के गाढ़े पसीने की कमाई मारने से उन्हें'''उनका क्या बना? बीस रुपये का नोट निगल जाने से इस जिनावर का पेट नहीं भरा''' ठीक वैसे ही'''क्या आदमी और जिनावर की जान एक नहीं? गणेसा सोच मे डूब गया। उसके सोच के पलों पर रह-रहकर बीस रुपये का नोट फरफरा जाता। अब उसे चंदो के मरने-जीने की कोई चिन्ता नहीं थी। उसे तो बस यह लगी थी कि कब जिनावर का पेट फटे और वह उसमें से बीस रुपये का नोट सहेज ले। उसका बस चलता तो वह उसका पेट चीर डालता —नहीं जिनावर का साथ, सहारा कोई कम है'''कैसा हो चदो उआं''' उआं करती-करती मानुष लोथ की ठौर एक गधे को जनम दे दे'''तुरत-फुरत उसके पास दो जिनावर हो जायें और वह छूटे काम पर फिर से जुट जाये'''उसने सोचा और पास खड़े गधे के गले से लिपट गया।

दण्ड-जीवी

सूरज आग बरसावे, आकास पवन झकोरे लगावे, धरती धधके सरोवर-ताल जल जावें और हरियाली-हिलोती भुन भस्म हो जावें। ढांणी पाल बने अगन-जाल, लू-ताप-झक्कड़ भरे, हूंकार, मानुस-जात करे हाहाकर। गौएं रभावें, गौ जाए हिरसावें। बालक-टाबर पानी को तरसें; जननी-जामण की आंखडियां सूखी बरसें। रीते-अंधे कुए सांय-सांय करें, पोखर सारे माटी भरे, अधड़ मूह मे धूल भरें।

मानुस-जात जब हारे-हिरसे तब तो हरि का ध्यान धरे। बामन-पडत इन्दर देव की महिमा सुनावें। लुगाइयां उनके गुन गावें। वो वज्र बना बैंकुण्ठ बैठा एक ना सुने। भू-तरा भाड़ बना, आग अटा सब को दाझें। रंच ढरके ना पल लाजे।

दूधिया कठों में जब छाले पड़े तो गाव-ढाणी-वासे से लोग निकल पडे। कोख में कुल की आंख और आख में सूखी सिकता-किरकिर पानी। सीस पर लत्तों की पोटली। कंधे पर बिलखती छोटली। गाडी में डोकरा-डोकरी तो इसके जुए मे छोकरा-छोकरी हरियाली-पानी परे और परे। चलते चाले थक के चूर। पर बस्ती-वासा दूर से भी दूर।

हल्लू-बल्लू अकेले, निपट-नियारे। ना उनके कोई आगे-पीछे ना कोई उनके सगे-प्यारे—जोरू ना जाता बस अल्लाह मियां से नाता। वो चले दूर लगन लगाये। मरू-मार छोड़ मंगल देस आये। नगरों में नगर ऊदलपुर यूं राजे जैसे तारों बीच चांद विराजे।

दूजे देसों-नगरों में धूल-झखड धमकें पर राजाजी के मंगल देश में खिले-खुवे चौराये बाग-बाडियां ताल-सरोवर छलछल करते चमकें, जबर-जंग परकोटे से महर घिरा-धना। उसपे ठंडे आकास का चंदोवा तना। ऊंचे-पूरे महल—बड़ी-बड़ी तनी हवेलियां, पत्थरों में कढे बूटे-कसीदे की ओढ़

साडिया। मडी-हाट में जिंस-नाज अटे। सेठ कामगार अपने काम-राम में डटे।

आज राजधानी ऊदलपुर में चहल-पहल, राह-रोजक खासमखास थी। राजाजी शेर के शिकार पर जो निकले तो दिनों बाद आज लौटे। आज ही नयी रानीजी की कोख फली थी—पहली बार—राज-वंश का उजाला जनमा था। बस समझें उस उजियारे की अगवानी के हेत ही आज राजाजी की राजशाही सवारी निकलने की तैयारियां थी।

राजाजी आज पूरे शाही लवाजमे और तामजाम के साथ महलों के त्रिपोलिया से निकलकर पहले चौपट-चोहट्टे—देवल-चौक'''में शोभा बखेरेंगे और फिर सोना-चांदी से मंढी दरबारी नौका में लगे सिंहासन पर विराजमान होकर अपने सभासदों के साथ सरोवर करेंगे। आतिशबाजी होगी—अगन-अनार आकाश में छूटेंगे और नौका में ही राजसी पातुरियां नाच-गान करेंगी।

नगर में शाही-सवारी की सजावट और धूम थी। चौड़ी-निथरी सड़कों पर लाल बजरी बिछी थी और अब उस पर पानी का छिड़काव होना था। तभी एक बडी टंकी अपने ऊपर साधे एक ट्रक आता दिखाई दिया। टंकी के पीछे लगे एक बंबे के छेदों से फूटती पानी की फुहारें सड़क को भिगोती हुई निछावर हो रही थी, नगर-वासे में पहली बार आये ढाणी के बासी हल्लू-बल्लू ने यह सब देखा तो उनकी प्यासी आंखों में पानी आ गया—वे चकरा गये। अपनी सूखी-सट ढाणी में बूंद-बूंद पानी से प्यास बुझाने की जुगत जोड़ते-जोड़ते किसी तरह वे राजाजी की इस नगरी में पहुचे थे और फिर खूब-खूब जी भरके पानी पिया था और इससे नया जीवन पाया था। वे इसी पानी की फुहारों को यों धूल में बिखरकर दम तोडता हुआ नहीं देख सकते थे। पानी का मोल उन्होंने रेत चाटकर जाना था। उनका बस चलता तो इस बिखरते पानी को अपनी पलकों की अजुरी में सहेज-भरकर अपनी प्यासी 'ढाणी' के बासियों के रीते कलसों में जा उडेलते पर'''पानी यूं बहे, अकारथ धूल-माटी में जा भरे—हल्लू से देखा ना गया। उसने अच-कचाये बल्लू का हाथ झटककर जो दौड लगायी तो पानी की मोटर के आगे ही जाकर रुका। उत्तर-दक्खिन हाथ चौड़ा उसने जो गला फाड़ 'रोक' दी

तो होले-होले सरकने [illegible]। मोटर [illegible] सवार तने चेहरों पर उभरी घाऊ आंखों के लाल डोरों में [illegible] बोल ही ललकारा—गवार-गांव-डेल। मौत आई है तेरी क्यों ?

—बाजी ! मोटर रो पाछलो बंबो फूटीज गयो ! पाणी हर्र-हर्र वेवै। थोडीक टेम में पूरी कोठी रीत जावेला।—ना समझी में हाथ डुला अपने सहमे बोल पर चिरौरी चढ़ा आखिर हल्लू ने कह ही तो दिया। ड्राइवर ने सुना, घलामी को आंख मे भरा और ब्रेक पर से दाब ढीली कर जो एक्सिलेटर दबाया तो हल्लू की आखो मे धुआ-धुआं हो गया—वह अपने ऊपर चढ़ी आती मोटर की गैल से छिटककर परे हो गया। धुआंई आंखो दम तोडती जल फुहारों को वेबसी मे देखता हल्लू ठगा रह गया। मोटर जल-धार बखेरती आगे से आगे बढ़ गयी।

एक-दूसरे का हाथ थामे हल्लू-बल्लू बावलों की टव ऊपर-नीचे देखते हुए नगर की सडकों पर डोल रहे थे। अब वे बडे बाजार, घटाघर और आगे जगदीशजी—चौक पार कर बड़ी-पोल, त्रिपोलिया, की तरफ बढ़ रहे थे कि लाल पगडी वाले प्यादों ने उन्हें आडे डंडों से ठेलकर सडक की बाजू में गड़े खंभों से बंधी रस्सी के परे धकेल दिया। अब आने-जाने वाले लोगों का रेला थम गया था। औरतें और बच्चे छतो सीढियों पर चिहुक रहे थे—राजाजी की सवारी अब आई ही समझो। तभी तोप का धमाका हुआ—धन् न् ऽऽ। पास खड़े पुराने-समझू लोगों ने कहा—तोप गरजी, राजाजी विराज गये हाथी पर अब रवाना होगी सवारी। तभी झांय-झांय-झनन्-झन् करते ताशे झनझना उठे। फिर नगाडे गड़गडाये, बाजे बजे और बिगुल जागे। भीड़ में धंसे हल्लू-बल्लू सास साधे खड़े थे। उन्होने आज शहर मे दो-एक घंटे घूम-घामकर मडी मे चावल के बोरे इधर से उधर जमाने की मजूरी पा ली थी। उनके कंधे तो इससे छिल गये पर इतने पैसे मिल गये थे कि कल तक के लिए उन्हें तसल्ली हो गयी। उनकी आखों मे चमक थी और इसी चमक से वे सवारी देखने को उतावले हो रहे थे। रह-रहकर वे पजो के बल उढंग होकर सर उठा आगे देखने की जुगत जोड़ते इधर-उधर हो

रहे थे। दो-एक बार तो आजू-बाजू खड़े लोगों ने सहा पर आखिर पास खड़े एक चौड़े कंधे वाले जवान ने एक के धौल धरी और उन्हें साजने से खड़े रहने की सीख दे झिड़क दिया।

अब बाजे सर पर बजने लगे थे तभी साफ-सजीली-नुकीली वर्दी धारे चुस्त-चौबंद सिपाहियों का दस्ता चमचमाते नेजे वाली बन्दूकें कंधे पर साधे सामने से कवायद करता गुजरा। उसके पीछे राजसी झंडे-निशान उठाये लवाजमा था। लाल रेशम के पाट पर सोने के धागों से कढ़ा सूरज किरनें बखेर रहा था। पीछे रेशम और जरी के जीन से कसे चांदी-सोने के जेवरों से लदे दो नन्हे दूधिया घोड़े थे—सवार कोई नहीं था। बस रखवाले बड़े आदर भाव से उनके बाजू में चल रहे थे। लुगाइयों ने उन्हें देखा—उनकी बलाएं लीं और हाथ जोड़ भक्ति-भाव से उन्हें शीश नवाया। ये ग्यारसी घोड़े थे जो हर एकादशी पर व्रत रखते थे और राजकुल के इष्ट देव की सवारी के लिए मान्य थे—राजाजी तक उन्हें अपनी सेवा में रखने का सोच मन में नहीं ला सकते थे। घोड़ोंवदार के पीछे झूमते हुए दो मदमस्त हाथी थे—सजेधजे। उनके आसपास कमर कसे पगड़ी धारे छड़ी उठाये चल रहे थे। फिर था वह राजसी हाथी, जिसके चौड़े माथे पर सिन्दूरी चित्राम बने थे और उसके उजले केले के तने से चमकदार दांतों पर मढ़े बंगड़ चमक रहे थे। परवत से डील-डौल पर गहरे लाल रंग की मखमली झूल लकदक कर रही थी जिस पर जरी का तरहदार काम किया हुआ था।

सोने ही का होदा कसा था जिस पर जगमगाते हीरे-मोती का हार धारे रेशम पारचे में बसे राजाजी विराजमान थे। उनकी आबदार अंगूरी पगड़ी पर माणक-मोती का मोर निकला ठसक दे रहा था। शीश ऊपर झमझम करते मोतियों की झालर से छत्र तना हुआ था और होदे के पीछे खड़े सेवक चंवर ढुला रहे थे।

हल्लू-बल्लू ने सांस रोककर राजाजी का ठाठ-बाट देखा। उनकी आन-बान-शान को सुना-गुना और सकते में आ गये। हल्लू गुम था और बल्लू चुप। पर तभी हल्लू ने बल्लू को कोहनी मारी तो वह जैसे सोते से जाग पड़ा।

—देखा!

—हां !

—जे राजाजी है।

—हा, राजाजी दरबार ! भगवान रूप !

—भगवान रूप !

—हां ऽ हां, भगवान बिरोबर !

—भगवान रूप-भगवान बिरोबर, तो राजाजी खाते क्या होंगे ?

—एऽ ! बल्लू के सामने से अभी-अभी राजाजी का हाथी गुजरा था और अब उनके दरबारियों-मुसद्दियों की सवारियां निकल रही थीं। उसके कानों, माथे में बाजे बज रहे थे। हल्लू ने फिर टहोका दिया।

—अरे ! कहा खोया ! सुन मैं पूछूं जे राजाजी भगवान बिरोबर तो जे खाते क्या होंगे ?

—खाने का क्या जो सब खावें वो ये भी खाते होंगे। बल्लू अब जुलूस के जादू से बाहर निकल आया आया था।

—क्या बोला ? दाना-दुनका जो हम सब खावें वो ही हीरे-माणक-मोती में रमे रेशम-मखमल में बसे राजाजी खावें ! तू तो बल्लू बौरा गिया ···निपट बौरा गिया।

—अरे अक्कल के फूड़ ! मैं कब कहूं के जो हम रूखा-सूखा खावें वो ही जे राजाजी भी खावें, जे तो तरम-तर माल-पकवान उड़ाते होंगे।

—माल-पकवान तो गांव के बनिये-बामण भी खावें हैं। फिर जे तो ठहरे राजा—दरबार···भला जे···।

—नी तो तू बता, भला जे और क्या खाते होंगे ?

—अरे बावले सोच तनि···मेरी समझ में तो जे हीरे-मोती या फिर मखमल के टुकड़े खाते होंगे ! हल्लू ने सुना और अपनी ओछी अकल पर मन ही मन झेंपकर रह गया। बोला, 'लगे तो ऐसा ही है।'

जोगिया आकाश में बादलों ने पंख पसारे, बिजुरी ने गान दरसाया, तो बरखा ने पलक उघाड़े तभी धरती की सूखी रगों में ठंडी सरसराहट दौड़ी और उसके हिये की दरारें पुरने लगी। उखड़े-बिखरे 'ढाणी-छाणी' के लोग

लुगाई अपने घर-वासों को दौडे। हल्लू-वल्लू के कौन जमा-जत्था खेत-कुए जो वे अपने वासे को लौटने में जल्दी करते। यहां शहर में चार पैसे की मजूरी तो थी वहां ढाणी में तो उनके लिए सुबह नही तो शाम को भूख ही थी। वहीं टिक गये, फिर जो जमे हुए मजूरों ने उन्हें वहां से धकियाया तो शहर से पांच कोस दूर लगने वाले एक गांव के बनिये के यहां मजूरी पर जा लगे।

और दिनों जैसा ही एक दिन था। दिन भर आकाश में बादल घिरे रहे थे। धुआं-धुआ उजास, उमस डूबी हवाएं और फुनगियां डुलाते अनमने पेड़, आज सांझ घिरने से पहले ही अंधेरा हो गया। वल्लू एक पहाड़ी के कूबड पर खडा बिलगाते बादलों को देख रहा था कि दिप-दिप दूधिया घोडा उसके सामने आ खडा हुआ और उस पर सवार ऊंचा पूरा राजशाही उजला सवार···हाथी मखमल···मोती हीरे वही···ठीक वही···उसके हाथ अपने आप जुड़ गये···वह लुढ़कने की ढब मे सीधा नीचे उतरा और धरती पर शीश धर खम्मा अन्नदाता उच्चारा और दूसरे पल शीश नवाकर खड़ा हो गया—आगे और बोल ना फूटा।

—भाई गमेली ! या गेल सहर ने पडे के···? एक मंद घन-गरज सा बोल था। दरबार-हुजूर खासमखास राजाजी उसे आदर देकर पूछ रहे थे—'भाई ! क्या यह रास्ता शहर को जाता है ?'

—अन्नदाता-अन्नदाता···हा हजूर···उसने दंडवत होकर हामी भरी। वह खडा होकर आंख भर देखता कि उन्होने एड़ लगाई और घोडा हवा हो गया। वल्लू जहां का तहां ठुका खडा रह गया। उसे लगा जैसे देव प्रगटे और विलमा गये। तभी पीछे से घोडो की टापें सुनाई दीं और एक के बाद एक पाच घुडसवार बीच गेल में खडे वल्लू को हवा की झाप से झखोरा देकर निकल गये। उसने अपने आपको संभाला—राजाजी ने मुझसे बात की। मुझे भाई कहकर टेरा···राजाजी ने मुझसे बात की···मैंने उनसे बात की···यह मन-ही-मन बुदबुदाया और हुलास से भरकर चुप हो गया।

वल्लू चुप हुआ तो फिर कब बोला ! हल्लू पास के गाव को गया हुआ था। गांव वालो ने लाख सर मारा। उसका नाम पुकारते-पुकारते उनकी जीभ थक गयी—कठ सूख गया पर वह नहीं बोला सो नहीं ही बोला।

आसपास के पच-पटेरा आये—हल्लू भी लौट आया। सभी ने उसे हिलाया-डुलाया—पहले फटकारा फिर चिरौरी की। हल्लू ने धौल-धप्पल कर उसे झाड़ भी पिलायी पर उसका बोल ना फूटा। अंधा कुआ और बहरी चट्टान भी बोलने पर बोल फेरते हैं पर बल्लू चुपाकर ठूठ बन गया तो ओझे-स्याने बुलवाये गये, झाड-फूक हुई। हल्लू ने टोटके-मनौतियां की और देव-देवालय धोके पर बल्लू चुप था सो चुप ही रहा। अब उसकी चुप्पी हवा के परों पर चढकर दूर-दूर गांवो मे जा बोली। अपने ही नही पराये गावो के धर्म-ध्यानी, लोग-लुगाई, हल्लू-बल्लू के टापरे-छप्पर मे जुड़ने लगे। एक ने श्रद्धा भाव से नमन किया तो उसके आगे माथे टेकने और चरण छूने वालों की कमी ना रही—थोडी भेंट-पूजा भी आने लगी तो बल्लू हल्लू की आख मे भी ऊचा उठने लगा। पर उसका मन ना मानता। कभी अकेले मे तो कभी रात-बिरात उसे कौचकर पूछता—अरे!—मुझे तो बता भला तुझे हुआ तो क्या हुआ···तेरे आसरे जनम-जगह छोड़ी है; तू भी मुझसे ना बोले तो जग में और भला दूजा कौन मेरा!—हल्लू आंख भर लाया पर उसका मौन ना टूटा जो ना ही टूटा। लोग उसे अब 'मौनी बाबा' कहने लगे। बात गाव के ठाकुर तक पहुंची—उन्होंने उसकी मौन साधना को जाचा और इसकी चर्चा राज-दरबार मे चलायी। मौनी बाबा की बात जब राजाजी के कानों में पड़ी तो उन्होने चार सवार दौड़ाकर उन्हें बुलौवा भेजा।

दरबार लगा था। ठाकुर-उमराव, मुसाहिब-मुसद्दी अपने-अपने आसनो पर बैठे थे और सबसे ऊपर सामने ऊचे सिंहासन पर राजाजी बिराजमान थे। मौनी बाबा आये राजाजी ने पहली देख मे उनके चेहरे को जांचा और आंखो-आंखो मे उन्हें तोला कि 'घणी खम्मा अन्नदाता' की गुहार के साथ-साथ बाबा शीश नवा दुहरे हो झुक गये। बाबा को जुहार में जुड़े सबने देखा उन्होंने किसी को नही। सब सकते में आ गये तो राजाजी ने एकात संकेत में चुटकी चटकायी। पल दो एक ढले राजाजी और बाबाजी आमने-सामने थे—दूजा वहा कोई नही। राजाजी ने भर आख फिर घूरा तो वह थर-थर

कांपने लगा। उनकी त्योरी में बल पड़े तो वह घिघियाया—

—हजूर अन्नदाता मैं कोई साधु-बाबा नहीं—मैं तो धोलीढाणी का बल्लू···।

—हूंऽऽ···राजाजी हुकारे···तो बोले क्यू नी—मौन के अबोला क्यूं ?

—धरमराज ! मौन-अबोला कुछ भी तो नी—पन जिन मुह हजूर राज से बोले-बतियाये अब उस मुंह से ओमजी-भोमजी, अच्चू-पच्चू और ग्वाल-गंवार से कैसे तो बोले—पाप जो लगे ? नहीं !

—ओह ! तो यू हीज चुप है।

—हां, हुजूर यू हीज चुप, साधुपन-सधुक्कड़ी और कुछ भी नाही। राजाजी ने सुना—होंठों ही होठो मे मुस्काये। उनसे रहा नहीं गया उठ खडे हुए और पास आकर बोले—पराये राज-वासे का मानुस हमे—राजाजी को इत्ता माने-जाचे ! और उन्होंने ठहाका लगाकर जो धोल मे हत्थड़ मारा तो बल्लू उनके चरणों मे जा लोटा।

तभी राजाजी ने उछाह मे भर ताली ठोकी। बात की बात मे फिर दरबार लग गया। घन गरज के साथ राजाजी ने हुक्म दागा—आज से यह 'मौनी बाबा' हमारा 'मार-बख्शी' बना। भरे दरबार यह हमारे चरणो में सिंहासन से लगा, नीचे बैठेगा। जिस ठाकुर-उमराव, रियाया-प्रजा को दण्ड—मार-बख्शेंगे तो उसे नहीं मार इस 'मार-बख्शी' को मारेंगे—धोकियायेंगे हम पर इस 'मार-दण्ड' को अपराधी अपने पर पड़ी 'मार-दण्ड' मानेंगे। राज की मार 'मार-बख्शी' को पड़ेगी पर उसकी पीड़ा-प्रताड अपराधी-खतावार को। राज-खजाने से 'मार-बख्शी' को छुटभैयों के बराबर मुआवजा मिलेगा। यह एलान कर राजाजी ने अपने पैरों मे पडे बल्लू को एक ठोकर मारी और यू दरबार बरखास्त हुआ।

आज अठवाड़े की पेशी का दिन था। राजाजी भूरज गोखड़े मे विराजे थे। सामने रखी शीशम की चोकी पर मिसलें-मोहरें रखी थीं और बाजू मे दाई तरफ दीवान हाथ बाधे धरती जोहते खड़े थे। अपने चरणो के पास उन्हें किसी की 'हिस-हिस' का भान हुआ—मार बख्शी वहां दुबका बैठा था।

राजाजी की आगे तनी एड़ी जब उसकी कांख में जा लगी तो उन्हे सूरज-गोखड़े मे अपने होने का भान हुआ—उनींदी आंखों मे रत-जगे के रंग बिखरे और सामने दीवान की छाया ऊब-डूब करती झिलमिलाई खास सरदार-उमरावों के चेहरे पुतलियों मे उभरे—आज सांझ जल-महल में होने वाले जश्न का जादू उनके आपे में जागा और उन्होंने लम्बी सांस अपने भीतर भरकर—'हूऽऽ'''हांऽ' किया। तभी दीवान ने सचेत हो पहला मामला अरज किया।

—हुजूर कल रात पेगली लुट गयी'''। दीवान आगे कुछ और कहते हुजूर ने फरमाया—

—वा रांड घर छोड एकली राते बारे क्यू निकली ? दीवान जी बात साफ करते कि राजाजी फूट पड़े और उन्होंने मार-बख्शी पर एक लात जड़ दी। वह दुहरा हो गया। दीवान का चेहरा लटक गया। सरदार सहम गये। दीवान ने साहस बटोरकर फिर अरज की—

—'गरीब परवर 'पेगली' लुगाई का नाम नही'''रियासत का एक गांव है'''पेगली गांव लुट गया रात को'''।

—तो काई ? गाव वाला रात सोवै के जागे ? पटेल लम्बरदार गांव का कांई करे ! लूट सों हुया नुकसान बिरोबर जरिमानो गावबाला पे कर दो ने हिदायत करावो के आगे सू गाव वाला रात जागे। काम करे ने दिन मे सोवै-रावै। हां आगलो मामलो ?

—होवम !'''अरज है—'जय-सागर' की रूड से लगे खेत-फसल राज के शिकार के 'हाके' मे उजड गये। गांव वालो की अरदास'''

—समझे। गांव वालो ने शिकार-हाते से अपणा खेत पाछे सरकावा का आदेस कर दो। राजाजी ने हुक्म दिया तभी उनका खास मर्जीदान खवास 'घणी-खम्मा' उच्चार ताजीम मे दूर खड़ा हो गया। राजाजी की मदमाती आंखों मे आने वाले सपने जागे।

—और कितनोक मामला है'''बस एक की सुणवाई और'''फिर बस '''पर हां'''वो जगदीश मंदर री ढाल मे लागी बागरा-काचली वाली दुकान मे कुर्सी पर बैठो वो बोदो मिनख कई करै। वा राज-सवारी निकले तो भी कदी-कदी कुरसी नी छोड़े। कुण वो ?

—हजूर वो तो दरजी···वो कुर्सी पर बैठ मशीन से कपडे सीवे। दीवान ने समझकर बताया।

—दो कौडी रो दरजी ने कुरसी पे बैठे···। राजाजी रिसाये और एक धप्पल जमाया 'मार-बख्शी' के घोल मे और आंखें तरेर के गरजे—उस दरजी-फरजी की दुकान बजार स् उठा पिछली गली में घाल दो।···और बस, आखरी मामलो अरज करो—। सिंहासन के बायें सिंह के जबड़े मे हाथ डाल राजाजी उढग हो गये।

—प्रिथीनाथ! मामला यू है के राज के शिकार की वेला मे जगल मे बड़े पेंड पर दो मचान बाधे गये। ठाकुर मानबहादुरसिंह ऊपर वाले मचान पर थे और ठाकुर जलमभौमसिंह नीचे वाले मचान पर। ठाकुर जलमभौमसिंह का कहना है कि ठाकुर मानबहादुरसिंह का मन तब शिकार में नही था और वह मचान पर बैठे कविता लिख रहे थे। तभी उनके हाथ से कलम छूटा और उसकी नोक सीधी ठाकुर जलमभौमसिंह की कलाई में धँस गयी। दीवान ने बयान किया।

—कलम की नोक कलाई मे धंस गीथी! तो कौन गजब ढह गयो—दोनो ठाकुरान हाजिर आये। हुक्म हुआ और दोनो ठाकुर सामने आकर झुक गये।

—कहो ठाकुर जो कहनो है।

—हजूर! यही कि कलम की नोक मेरी कलाई मे धंस गयी सो तो कोई बात नही; पर वहा आंख होती तो? राजाजी ने सुना और आखें तरेरकर ठाकुर मानबहादुरसिंह की ओर देखा। मानो इशारा किया कि—तुम्हें सफाई मे क्या कहना है।

—पर हजूर! कलाई पर आख कैसे हो सकती है? राजाजी ने ठाकुर मान को सुना और ठाकुर जलमभौम की तरफ देखा।

—अन्नदाता! सवाल, कलाई पर आख के होने या नही होने का नही है। सवाल है, अगर कलाई पर आख होती तो क्या होता? राजाजी ने भौंहों में बल डाल ठाकुर मान को घूरा।

—पर दयालु! कलाई पर आंख हो ही कैसे सकती है···हजूर।

—थोड़ी देर को मानो आंख कलाई पर तब होती तो···तो क्या

होता ? ठाकुर मान ! बोलो। राजाजी न्याय तोलते खुद बोले।

—तो···तो···तो···ठाकुर मान की घिग्घी बँध गयी।

—तो-तो क्या ? बोलो—कलाई पर आंख होती और थारो कलम हाथ सू छूटतो तो कांई होतो ? बोलो !

—तो-तो आंख फूट जाती हजूर। ठाकुर मान को मानना पड़ा।

—तो जू ठहरी ! हमारे सिकार के टेम पर कविता कहोगे और किसी की कलाई की आंख फोड़ोगे ! राजाजी गरजे और मार-बख्शी की पसली में एक जोर की लात जड़ दी। वह दुहरा हो गया और चीख उसके गले में रुधकर रह गयी। इधर ठाकुर का सर लटक गया तो ठाकुर जलमभौम की बाछें खिल गयी।

—हो गयो न्याव ठाकुर जलमभौम ? राजाजी ने पूछा।

—घणी खम्मा हजूर मिल गया न्याय।

—नी अभी आधा न्याव हुयो है। आधो होनो है और।···ठाकुर जलमभौम ! आंख कलाई पर होती तो फूट जाती नी ?

—हां, हजूर। फूट जाती।

—तो तनि अपनी आख कलाई पे धरने तो बताओ भला। ठाकुर जलमभौम ने राजाजी को कहते सुना तो हवाइयां उड़ने लगीं।

—गरीब परवर आख कलाई पर कैसे रखी जा सकती है ?

—वैसे ही जैसे आख कलाई पर फूट सकती है ?···ठाकुर ! आपस के वैर-भाव राज के न्याव की दुहाई देकर निपटाना चाहो। हो हूऽ। कहकर राजाजी लाल हो गये। ठाकुर जलमभौम को झुरझुरी छूट गयी। तभी राजाजी गरजे—मार-बख्शी ! थारे कलेजे में जरब पहुंचाई इण ठाकुर ने···तू ले जा इने ड्योढी पर और इसके पग्गड़ में लगा दो जूत। राजाजी ने हुक्म सादिर किया और उठ खड़े हुए।

राजाजी के जाते ही दरबार में तनाव तन गया। मार-बख्शी बल्लू का मुह लटक गया। उधर ठाकुर जलमभौमसिंह का तो पानी ही उतर गया। तभी ठाकुर मानबहादुरसिंह ने चुप्पी को भेदते हुए डंक दिखाया—मार-बख्शी

जी ! राजाजी का हुक्म कब बजाओगे ? चलो···चलो, करो आदेश की पालना, पहुचो-पहुंचाओ ठाकुर को ड्योढी पर और रखो उनके पगड़ मे जूत।

—म्हें तो खुद मार खावें बापजी, जलम से मार माथे में मडी। बखसिस मे भी मार मिलै···म्हें भला किसे कैसे मारूं···फेर ठाकुर तो माई-बाप···बल्लू फेर मे पड गया।

—सोच लो, हुक्म हुजूर का, आज तक किसी ने टाला नही···आगे तुम जानो···भुगतना। ठाकुर मान ने धार दी।

—तो···तो पधारें माई-बाप ड्योढी कने···। बल्लू के बोल कांप-कांप गये।

—तू, बल्लू ! मेरी पगडी पर जूता मारेगा ? तो चल, हजूर की बख्शी राजाजी की धारण की हुई पगड़ी मेरे सिर पर बधी है। चल हो हिम्मत तो लगा जूत हुजूर की पगड़ी पर। ठाकुर जलम ने बात को बल दिया तो, बल्लू अचकचा के उलझ गया।

—नी-नी बाप जी जे पाप मैं नी ओढू···मर भले जाऊं···। बल्लू कांपकर पीछे हट गया। ठाकुर जलमभोम सामने खडे थे। पर उससे कुछ करते ना बना। उसकी नयन-कटोरियो मे उनका आग-आग चेहरा और दागी हुक्म तैर गया। इधर खाई उधर कुआ। पर इससे कुछ करते-धरते ना बना और वह माथा पकड़कर धम्म से धरती पर बैठ गया।

दूसरे दिन दरबार जुडा तो सभी के चेहरो पर राजाजी की हुक्म-उदूली से उपजी मुर्दानगी पुती थी और राजाजी के पगो मे बल्लू सास खीचे मुर्दा बना पड़ा था—आज वह खुद को बल्लू ही पा रहा था 'मार-बख्शी' नही।

—हुजूर के हुक्म की पालना कल मार-बख्शी ने नही की। दीवान के बोल बारूद की सुलगती बूद के रूप मे बल्लू के कान मे पडे। उसकी सांस रुध गयी।

एक मारक टेढी निगाह राजाजी ने बल्लू पर डाली। वह अचेत था। उन्होंने अपनी ललछौंयी आखें ठाकुर जलमभोम की तरफ तरेरी तो वह अर-जाऊ हो बोले—हुजूर ! हुक्म बजाने के लिए सेवक तो ड्योढ़ी पर हाजर

आया'''बात पूरी होती इसके पहले ही राजाजी पैर पटककर खड़े हो गये और धमककर एक ठोकर बल्लू की छाती पर दागी और फिर ठाकुर जलमभीम को हुक्म दिया कि यह इस बल्लू-बलद को ठोकरें मार-मारकर ड्योढ़ी से बाहर निकाल दे। इसके साथ ही उन्होंने फरमान जारी किया कि 'मार-बख्शी' के ओहदे के लिए डोंडी पिटवाई जाये।

रियासत के कस्बों-गावों डोंडी पीट-पीटकर ऐलान किया जा रहा था। न्याय के अवतार और राजाओं के राजा भागवान योगेन्द्रसिंह जी साहब बहादुर के दरबार में 'मार-बख्शी' के ऊंचे ओहदे पर जो लगना चाहे वह अगली पूनो को दिन के दस बजे राजमहल के चौक में हाजिर हों।

रियाया प्रजा-जनों ने सुना-गुना और नगर की राह ली। ठीक दिन ठीक समय पर बेकार-बेरोजगार लोगों की भीड़ राजमहल के चौक में आ जुटी। एक-एक करके उम्मीदवारों को राजाजी के सामने अरजाऊ करने की बात बोलकर दीवान चले गये। थोड़ी देर बाद उम्मीदवारों के नाम पुकारे जाने लगे।

पहला उम्मीदवार जब राजमहल से बाहर कमर पकड़कर सीढ़ियों पर आया तो, लोगों ने देखा उसके होठों से खून रिस रहा है। उसका चेहरा पीला और आंखें पनीली हैं। थोड़ी देर में उसके पास भीड़ जमा हो गयी। उसकी पीड़ा-पगी उतरी उदास सूरत देखकर तीन चौथाई के करीब उम्मीदवार तो छू हो गये। उम्मीदवारों की टोली में अब ऐसे ही लोग बचे थे जो बरसों से बेकार रहकर हालात के हाथों रिब-रिबकर मर रहे थे। उनमें से बुलाया गया दूसरा उम्मीदवार भी जब उसी तरह टूट-टाटकर आंसू नहाया चेहरा लेकर बाहर आया तो कुछ और उम्मीदवारों का हौसला टूटा और वे भी वहां से टल गये। अब दो ही मर्द रह गये थे—एक साठ साल का सुला हुआ थका-सा आदमी और दूसरा चालीस साल अध-बूढ़ा-अधपका मानुस। पहला लम्बा होने पर भी तना हुआ नहीं था और दूसरा सीधा होने पर भी सधा नहीं था—दोनों टूटे-उखड़े हुए। जमने की हौंस में डटे खड़े थे।

अगला नाम पुकारा गया—जवाब आया गैर हाजिर। फिर अगले से अगला नाम पुकारा गया—जवाब मिला हाजिर नहीं आया। और फिर अगले से और भी अगले नाम को पुकारा गया तो बस बूढ़ा आगे बढा और तनकर चलने लगा। सीढ़ियों तक पहुंचते-पहुंचते ही उसकी सांस फूल गयी। फिर भी पहुंचना था सो राजमहल के भीतर पहुंच ही गया। राजा जी इस बूढ़े को सामने देखकर झल्ला गये। बोले—

—बूढ़े-खोकड़े तूं झेलेगो हमारी झाल'''मार-बख्शी बन ग्रावेगा हमारी मार।

—हुजूर! आपके राज मे सदा मार ही तो खाता रहा हू, सहणे-पटवारी, सिपाही-महाजन सभी की मार तो जीवन-भर खाता रहा और अब बेटे-भतीजों की मार खा रहा हूं; तो भला हुजूर की मार से कौन मर जाऊंगा? बूढा दम भरकर बोला। तो उसकी ठसक राजाजी को चुभ गयी। चिंघाड़कर चेंटे—

—आपके उज्जड़-गंवार बेटा-भतीजो की मार से राज-मार की बिरोबरी! थारी जे हिम्मत! उमिर भर खाया फेर भी नी अघाया! 'मार-बख्शी' के ओहदे ने ललचायो। ओहदो तो नी पन मार तो मिले ही मिले। इतना कह उन्होंने उचककर उसकी पीठ में जो लात जमायी तो वह मार झेलकर पहले झुका और फिर सधकर खड़ा हो गया। उसने वहां से जाने के लिए पैर बढ़ाया कि राजाजी ने उसे रोका—ठहर भी, परसादी लेकर जाज्यो। फिर चुटकी बजायी तो दीवान ने उमर के चालीसे के पार चलते दूसरे मानुस को सामने ला हाजिर किया। राजाजी ने अचरज की आंख से उसे घूरा तो वह 'घणी खम्मा' कहकर झुक गया।

—ओय, हत्या! तूं राज-मार मनुहारेगो!

—क्यों नहीं हुजूर। जीवन-भर अन्नदाता आपका अन्न खाया अब मार खाऊं तो कौन अजब!

—बात तो ठा-बद। भीतर से एक भभका उठा और राजाजी लहर में आ गये।

—लात पीछे, बात आगे'''बता राज आगें दो सिकार, बदूक में गोली एक-हौज। तो बोल राज काई तो करे? बोल-बोल है जुगत? राजाजी ने

हुलसकर सवाल किया।

—जुगत है हुजूर···अपनी कटार की धार राज अपने आगे कर बंदूक की नाल उससे सटाकर जो घोड़ा दाबयेंगे तो आधी गोली एक शिकार के सीने में और आधी गोली दूसरे की छाती में और दोनों शिकार चित् !

—वाह ! वाह ! मगज थारो चालू-चलतो, तगडो-ताखड़ो दिमाग तो है पन हाथ-पग थारा कीरतन करै···झेलेगा झाल सेवेगा 'राज-मार ?' राजाजी ने सीधे-सीधे पूछा—मरेगा तो नी राज-मार सों ?

—हुजूर ! भूख की मार से नहीं मरा तो दयावतार की मार से कैसे मर जाऊंगा ? राज-मार का सेवन करके तो मैं मोटा-चंगा हो जाऊंगा।··· बिन मां के बारह बरस के मेरे बेटे को भी राज-मार की छांह मिलेगी तो वह भी बढ-पनप जायेगा···मेरी बिन ब्याही हुशियार बेटी भी ठिकाना पा जायेगी···भगवान राम की पग-छुअन पीकर पत्थर में प्राण जाग गये··· करुणा-कगार आपके पद-प्रहार से मैं जी जाऊंगा···हुजूर, मुझे चरणों में ठोर दें दयालु।

—जे ब्वात ! उतरती पूनों तांई थमे परख-निरख देखवा को हुक्म करां···आज से यू राजाधिराज योगेन्द्रसिंह जी के० सी० एस० आई० जी० सी० एस० आई० को 'मार-बख्शी' हुयो···अब लग काम सिरे ने राज-मार बख्श इण ढूठ बने बूढ़रा ने जो करै आपरे लगूर लीतरा सू राज-मार री विरोवरी। राजाजी ने थोड़ी दूर खड़े बूढ़े की तरफ इशारा किया और आगे कहा।

—जमीदोज कर दे बूढ़ल ने मार-मार ठोकरां ड्योढ़ी बाहर करदे इन ठसकीला ठीकरा ने। राजाजी ने हुक्म दागा।

—जान बख्शें हुजूर···यह बूढ़ा मेरे बाप के बराबर है···इसको मैं कैसे···वह बोल की बेल भांजकर कह गया।

—राज-हुक्म में दखल-देर। राजाजी भन्नाए—गडक-कुत्ता ने पगों में बिठायो तो लागो हाथ चाटवा। चल छिटक राज-नजर सूं दूर···। राजाजी अगारा हुए और फिर आग की लपट बनकर घेर लिया उसको। फिर मार-पटककर उसके सीने को अपने शिकारी जूतों से तोडने जुटे तो कब रुके तभी सामने खड़ा बूढ़ा दोहरा हो उस पर झुक गया। बूढ़े के बचाव-

विचार ने आग मे घी का काम किया और उन्होंने चार कदम पीछे हट उसकी मुट्ठी भर फंसलियो जो ठोकर मारी तो खून उगलकर थोड़ी दे बाद वह वही ठंडा हो गया—और उसके पास बूढ़ा अचेत।

दूसरे दिन दरबार मे भरा हुआ सन्नाटा छाया था। राज-महल मे हत्या वह भी राजाजी के हाथों—एक ब्रह्म-हत्या। रियासत के लंबे इतिहास में यह अनहोनी और अशुभ घटना थी। जमी हुई चुप्पी के जाल को भेदकर राजा जी ने उच्चारा।

—राजा धरती पे ईश्वर-अवतार होवैं। अन्याव वो क्दी नी करै। अन्याव ने यो न्याव मे ढालें। जो होणी थी सो कल हुई। न्याव आज भी राजरे हाथ है। राज हुक्म करै के गुजरा मार-बख्शी रो बेटो आज और अब सू न वो 'मार-बख्शी' है। राज ने भान है के नवो 'मार-बख्शी' मुटियार नी छोटो है बाराह बरसरो, भगवान भूतनाथ रे भरोसे राज री मार खावेगा तो काल बडो वे जावेगा।

इस हुक्म के बाद दरबार बरखास्त हो गया, सदा-सदा के लिए।

सांस भई कोयला

अब्बे ! कर क्या रिया । तनि दो-चार गेती और मार; तसला-दो तसला मिट्टी और वाहर गेर । इस विते भर गड्ढे में आठ वरस का छोकरा भी ना समायेगा और यहां ढेर लगा है जवान-जहान लाशों का···चल-चल शुरू हो आखिर तो कब्र बनानी है आदमी की···

—ओ···ओ···राम करे सो खरी, पर तू करे क्या है ! भला मुर्दे को जला-एगा या बस यूं ही सेक-माक के धर देवेगा मुंडी उसकी । और झोंक लकड़ी । जो हो मानुस-जात है उसके दाह-कर्म में कुछ तो ढंग रहे ।

—लो भाई खिदमतगार ! खोद गेरी हैं पचास कब्रें । एक ठो गिन लो फिर हिसाब के टेम नानुच ना करियो । अभी देख-समझ लो ।

—भूतनी के, जो गड्ढे खोदे हैं, वो तो सामने हैं । बोला ना तुझे के इनमें विलास दो बिलास के झोगर नी गाड़ने···अरे जवान-जब्बर लाशें दफनानी हैं । चल कर इन्हें और गहरा । एक कब्र खोदने के पांच रुपये पर-खारिये कोई सवाब में थोड़े ही खुदवा रहे थे गड्ढे !

—देख-भाल लो, चिता चुन दी है, एक लेन में ठीक से । लम्पा लगे तो फेर ना कहियो के मुर्दा खड़ा हो गया, उसे बिठा, उसे सीधा कर···उसे जला ।

—क्यू भाई ! क्यूं नी बोलू । कोई सेंत-मेत में फूक रहे जे ल्हासें ।

एक देह-दाह पर पाच रुपये के हिसाब से नही वसूलोगे मजूरी ?

—हा, आज तो दाह-कर्म भी मजूरी हो गया ! पर तेरा वो आगेवान बाघ भर लकड़ी एक मुर्दा फूकने को दे तो भला कैसे पार लगे जवान जब्बर ल्हासें···हा, बूढे-ठूडे···बालक-टाबर की वात और है।

—ठीक कही तूने···वो भी करे तो क्या। चंदा-वंदा और मदद-महर लोगों से लेकर सद्गति के पुण्य-काम में जुटे हैं। वो और उनके संगी···पर इन लकड़ियों से तो निभना नही···कहा था मैंने और कुछ नही तो मिट्टी का तेल ही जुटाओ कही से पर···।

—जुम्मन भाई देख लीजियो, जे लोग खाली-माली गड्ढा पूर के, बिना लाश उसमे दिये। कब्र ना उठा दें···ईमान तो···।

—ईमान जो होता नियत में, फिर क्यों तो आता ये बवाल इस शहर में, क्यों बनती ये बस्ती मसान-कब्रिस्तान।

—अब तू जासती ईमान मत छोंक, कब्र खोदने में खुद तो बरत ईमानदारी।

मौत के अंधड़ के बाद मस्जिद के बसाव और उससे लगे मन्दिर के पसार मे ठहरी उबकाई भरी हवाओ में ऐसी ही बातें तैर रही थी। पिछले तीन दिनों से यहां-वहां से आये खिदमतगारो और स्वयंसेवको के झुंड के झुंड शहर में बिखर गये थे। क्यो ना भला, जिन्दगी के बाध तोड़कर मौत जो घुस आयी थी इस शहर मे। यू तो मौत देर-सबेर हर घर की चौखट पर दस्तक देती ही है; पर लगते दिसम्बर की उस सर्द रात मे मौत अंधी बिजली बनकर शहर की उस बस्ती पर बिना गरजे यू टूटकर गिरी कि आदमजाद ही नही परिन्दे-चौपाये तक ढेर हो गये—पेड झुलस गये—फूल मर गये।

निंदियाई मां के सीने मे दुबके नन्हे-मुन्नो के दूधिया गले हवाओ में घुले जहर से रुंध गये, वन्ने के फूल नहाये बदन नवोढाओं की गजरों गुथी

बाहों में ठंडे हो गये, मेंहदी रची अंगुरियों में सुहागिनों के मुखड़े जड़ हो गये—नेह-रातें बोल भरमा गये, भाई-बहनों की गल-बहियां जकड़ गई मौत का फंदा बनकर, बीमार बुढ़ापे की दवाइयों के चम्मच थरथरा के हाथों से छूट गये और आंखों में भरी उमस ने एक-दूसरे को मरते दम भी देखने ना दिया।

मौत रिस-रिसकर फूटी थी उस बड़े कारखाने के अजगरी गैस-टैंक से रात के पिछले पहर और शहर की सांसों में जहर उड़ेलकर चुप हो गयी थी। गहन चुप्पी और दमघोट सन्नाटा। मौत जिन्दगी को रौंदती-कुचलती उसे रेलती-पेलती गुजर गयी थी। ऊंचे पर्वतों के माथे पर विजय-तिलक बनकर चढ़ने वाली जिन्दगी, समन्दरों को खंगालकर उसके मोतियों पर राज करने वाली जिन्दगी और सूरज-चांद के कर्ता को ललकारने वाली जिन्दगी इतनी बेबस और निरीह होकर रह गयी कि अपने ही हाथों डाली गयी गैस के महीन धारों के आगे उफ तक ना कर सकी। उस बड़े शहर के जंगी कारखाने में कीड़े-मकोड़े मारकर इन्सान की जिन्दगी संवारने की गरज से जुटाया गया सामान खुद इन्सान को कीड़े-मकोड़ों की मौत मार देगा—यह कब किसके मन-माथे में आया था! अनहोनी होकर रही। यूं मौत महरबान है, मातम का मौका मोहय्या करती है। पर अपने ही हाथों रची गयी यह मौत इतनी क्रूर साबित हुई कि जीते आदमी की आंखों में व्यापे आंसुओं तक को पी गयी और भर दिया उनमें अंधापन जो अपने लगे-सगे की लाश तक को ना देखने दे—छू भी ना सके उसे क्योंकि मौत के *मातों के हाथों में सकत जो नहीं।*

फिर भी जिन्दगी आखिर जिन्दगी है। हमेशा के लिए तो वह मरने वाली नहीं। सो जिन्दगी आयी है मौत को समेटने के लिए। मौत की धुंध को धकियाकर उसकी ठौर जिन्दगी के उजियारे को लाने के लिए। जिन्दगी आयेगी तो अपने साथ वे सारे दंद-फंद भी लायेगी ही जो जिन्दगी की पहचान बनते हैं; उसे अच्छा-बुरा बनाते हैं।

हजार-हजार अध-मुर्दा लोगों के बीच पचासों-पचास लाशों की शनाख्त-

पहचान का सिलसिला जागा तो रुका कहां जाकर !

—ये मेरा मन्नू है···ये उसका बदन है···ये उसकी लाश है···इसे मत छीनो मुझसे।

—बहना कैसे कहती हो कि यह तुम्हारा मन्नू है। तुम्हारी आखों पर तो पट्टी बधी है।

—पट्टी हटाओ मेरी आंखो से, छोड़ दो मेरे हाथ; मैं···।

—पट्टी हटाकर भी तुम नही देख सकती। गैस का असर है तुम्हारी पुतलियों पर···फिर भला कैसे मान लें कि यह तुम्हारे मन्नू की लाश है?

—मैं इसे छूकर—इसे सूंघकर कह सकती हूं कि यह मेरा मन्नू है।

—ये तो मेरा राजा है···मेरा लाल, हत्यारी हवाओं ने इसके प्राण हर लिए। तुम इसकी लाश तो मुझे सौंप दो। और रूखी रुलाई कौंध गयी।

—नही···नही यह किसी की निम्मो नही···यह तो मेरी ब्याहता है···मेरी दुल्हन···इसके हाथों महावर रचा है। इसकी मांग में नया-नया सिंदूर भरा है। कलाइयो मे गजरे और जूड़े में चम्पा की वेनी मैंने ही बांधी थी—सुहाग-सेज पर कल ही। और···और दम-घोट हवाओं से दूर भागकर हम दोनों ही आये थे इस अस्पताल साथ-साथ।

—भाई ! जिसे तुम बाहों मे भरे बैठे हो वह तो लाश है एक पच्चीस-तीस बरस की औरत की। उसकी माग में ना सिंदूर है और ना हथेलियों पर मेहदी। सफेद ब्लाउज-साडी धारे यह तो कोई विधवा-सी लगती है।

—तो फिर कहां गयी मेरी नीरा···मेरा घर···मां-बाऊजी···नटखट रज्जो जो नीरा को मेरे कमरे मे धकेलकर उड़न-छू हो गयी थी।

—तुम एक के उडने की बात कह रहे हो मेरे भाई ! यहां तो बीसियों बीस नीरा-रज्जो उड गयी। नीरा क्या नीर तक नही बचा आखों में।

—मेरा बिटवा लाया था मुझे यहां—अपनी पीठ पर लादकर···अरे ! कोई देखो उसे, पुकारो उसे भला, तलाशो उसे।

—कौन किसे कहां तलाशे-पुकारे बाबा। हिलो-डुलो नही ऑक्सीजन लगी है तुम्हे।

—मेरी जवान-जहान बेटी···अरे, परसों ब्याह है उसका। कल ही तो गाव से लाये थे उसके अब्बू···मैं नसीब जली काम के मिस रह गयी पीछे। दहाड़ मारकर रोती गांव की औरत खड़ी थी मुर्दा-घर के बाहर।

—भीतर मुर्दे पड़े लगे हैं। जाकर देख ले एक-एक का मुंह चादर उघाड़ के···पहचान कर लौट और फिर बोल। मुर्दाघर के कारकून की भारती बोली थी।

—भैये मेरे, वो तो सब कर चुकी। मुर्दों के ढके चेहरे से कपड़ा हटाते-हटाते बाह थक गयी। मेरी बेटी कही ना मिली।

—माई ! पहले ही साफ-साफ बोलती ना के बेटी है तेरी···चलो यहां से···औरतों का मुर्दाघर उधर है—बायी बाजू सामने को उधर तपासो।

—इधर उसके बापू का मुर्दा नही···मुर्दा नही तो बोलो वो जिन्दा है ना ? जीता बचा वो !

—अब वो हम कैसे बोलें। सहर मे और भी तो मुर्दाघर हैं। जहां-जहां हैं, वहां-वहां तलासो। जाओ-जाओ। गेल छोड़ो और भी मुर्दा लोग को आने दो।

—और मुर्दाघर और मुर्दे ! कही ये जो ल्हास ला रहे थे तो उसके बापू की तो नही। मुह दिखा दो भैया।

—थम के। जरा कपड़ा हटाने दो। दिखा दो लाश का चेहरा इसे।

—नही जे नही। उसनें फिर कपड़ा ढापते हुए कहा—उसके बापू जे नही।

अपने का मुर्दा चेहरा ना देखकर उल्लास होना था, पर वह विलाप

कल्पी हुई जहां थी वहीं ठनक गयी और बोली—अब मैं मरी कहां पाऊं तुम्हें।

जब से एलान हुआ था कि मरने वालों के रिश्ते-नातेदारों को वाली-वारिसों को सरकार और कम्पनी मुआवजा देगी, अस्पताल के कारकूनों-डॉक्टरों पर एक नयी आफत आन पड़ी थी। जिन लाशों को मुर्दाघरों में पड़े-पड़े चौबीस घंटे हो गये थे—और वे सड़ने लगी थीं। तब उनका वारिस कोई ना था। पर अब उन्हीं के चार-चार वारिस-नातेदार आन खड़े थे। जांच-तसदीक, पंचनामे-तस्वीरें बनवाकर पुलिस के मार्फत सही लोगों को लाशें सौंप दी गयीं थी फिर भी पचासों लाशें मुर्दाघरों में पड़ी सड़ रही थी। जब उनका कोई वारिस सामने नहीं आया तो स्वयंसेवक और खुदाई खिदमतगार आगे आये उनको अपने-अपने धर्म-मजहब के मुताबिक किनारे लगाने के लिए। वाजिब कानूनी कार्रवाई करने के बाद, मुर्दों के फोटो का एलबम पक्का करके, लाशों की शिनाख्त होने लगी—हिन्दू थे मुसलमान थे··· पर ईसाई की क्या पहचान?

—अरे; देखो भी कहीं क्रॉस-व्रॉस बंधा-गुदा होगा।

—पर इस मुर्दे पर तो कहीं कुछ नहीं, सूरत से ईसाई लगता है इसलिए तो पूछा।

—ईसाई की सूरत हिन्दू-मुसलमान से कुछ अलग होती है भला!

—जैसा हमें लगा, वैसा बोल दिया। अब तुम बोलो जिस बाजू गेर दें लाश को, मुसलमान तरफ या हिन्दू आड़ी।

—गिरजाघर से पादरी साहब को बुलाकर पहचान करवा लेंगे, फिलहाल, इसे हिन्दू-मुसलमान किसी तरफ ना डालो, उधर आदमी वाली फुटकर लाइन में लगा दो।

—हां, लो इस्लाम भाई! गिन लो अपने मुर्दे और रसीद कर दो पावती की···और हिन्दू भाई लोग! सभाल लें अपनी लाशें, मतलब अपने मुर्दे···यानि हिन्दू मुर्दे···रैदास! पक्की नफरी करवा दे और रसीद करवा ले।

जीते जी जो आदमी अनाज-केरोसिन की एक लाइन में खड़े थे बाद मरने के वे अपने-अपने धर्म-मजहब के एतबार से अलग-अलग कतारों में लगा दिये गये थे।

—हां, ये हिन्दू···इधर

—ये मुसलमान···उधर

—ये सूरत से दूजा। ये उधर आदमी वाली लेन में।

—और ये क्या? औरत की लाश, मर्दों मेली—उधर गेरो जिधर मां-बहनें।

—डॉक्टर साहब! मर्द हिन्दू-मुसलमान को तो उघाड देखकर फिर भी पहचान लिया हमने···पर औरतों के मजहब-धर्म की शिनाख्त कैसे तो बने···और फिर लड़के-बच्चे कौन 'कौन' है? यह कैसे जाना जाये? पुलिस वाले ने मौके पर अपने होने का सबूत देते हुए शक जाहिर किया। है डॉक्टर साहब आपकी डॉक्टरी में इन्सान की शक्ल देखकर उसके ईमान-धरम का पता लगाने वाला कोई आला?

—देखिये मामले को हम तूल ना दें तभी ठीक है, लाशें सड़ने लगी हैं और मुर्दे जिन्दगी के लिए खतरा बनने लगे हैं, औरतों-बच्चों को उनके पहनावे या आम जानकारी या जायजा लेकर मुर्दों की इस या उस कतार में लगवा दें। शिनाख्त बिल्कुल ही ना बन पायें तो उधर इन्सान वाली यानि शक वाली लाइन में लगवा दें। दोपहर तक आसपास के मोअत-बिरान को बुलाकर इन्हें भी रफा-दफा करवा देंगे। बस आप तो लिख-वाइये।

—नाम?

—ना मालूम।

—उम्र?

—बीस से पच्चीस साल।

—रंग गेहुआं।

—मर्द या औरत?

—मर्द।

—कहां मिला? कहां से आया?

—ना मालूम।

—जाति-धर्म ?

—कलाई पर गुदा है शेयर चन्दर'''पर ख़त

—चलो डालो बायी बाजू कब्रिस्तान वालों के
पर दोस्त का नाम गुदवाने का चलन भी इधर देखा
सबूत तो वही है। पुलिस अफसर ने मुर्दे का जाय
यूं मुर्दे स्वयं-सेवकों और खिदमतगारों में बांट दिये
लॉरी ने कब्रिस्तान की राह ली तो दूसरी ने श्मशान

सूबे की राजधानी के रूप में बढ़ते-चढ़ते इस पुराने
दूर-दूर तक जो पसारी तो उजाड़-वीरानों में भी जा
बस गयी। किसी बस्ती में पानी था तो रोशनी नहीं,
पानी नदारद, सड़कें थीं तो नालियां नहीं, नालियां
नहीं। रहायशी बस्तियों के लिए जरूरी दीगर आसा
बात तो दूर वहां ना कब्रिस्तान था ना श्मशान।
वासियों ने चुनाव के मौके पर आवाज उठाई पर कुछ
लीडरों से अरदास कर-करके हार गये। कहा—जी
जुगाड़ हमने कर लिया, फफोलों-छालों की दवा झुगि
लिए, इस बस्ती में दवाखाना ना सही।

—श्मशान-कब्रिस्तान के लिए हजार-पांच सौ ग
तो जुटा दें। मुर्दे ढोते कंधे छिल जाते हैं। सगा-सुहाता
दफनाने ले जायें उसे शहर की तरफ चार कोस दूर,
जहां मरो वहीं गड़ो-जलो पर'''।

पर किसी ने ना सुनी तो वही हुआ जो होना था।
गबरू परदेसी जवान मरा तो अभी-अभी बनाये गये छो
बाजू उसका दाह-सस्कार कर दिया गया। लगा लगा
को, भाई लोग देवल से कुछ ही दूर नयी-नयी बनी
दफना आये। जब बस्ती से थोड़ी दूर श्मशान उभरने

स्तान आबाद होने लगा तो जहां नगर परिषद् के कान खड़े हुए वहीं हिन्दू-मुसलमानों में शक-सन्देह गहराने लगा कि कहीं कब्रिस्तान फैलता-फैलता देवल की भूमि में ना धस जाये या श्मशान की जमीन का पसार मस्जिद की हदों में ना आ जाये। इसी शुबह के रहते दूर-दूर कब्रें बनाकर कब्रिस्तान का फैलाव किया जाने लगा; वैसी ही यहा-वहा चिताएं जलाकर उनके ठौर के दूर-दूर तक संकेत बनाये जाने लगे।

किसे से कोई कहता कुछ ना था। पर भीतर-ही-भीतर दोनों तरफ के अगुआ बाट जोहते थे कि बस्ती में कब कोई मौत हो और उसका 'इस्तेमाल' देवल या मस्जिद की हदें बढ़ाने के लिए कर लिया जाये। अब, जब मौत जिन्दगी के सारे बांध तोड़कर बस्ती में घुस आयी थी तो फिर पैतरेबाजी होने लगी। गुपचुप,-कहर या प्रलय, जो करें, की घड़ी थी। सरकारी अमला वैसे ही सकते में था। सो कहता-करता भी क्या। फिर तो बन आयी कब्रिस्तान-श्मशान की हदें बढ़ाने वाले अगुआ लोगों की।

इधर दूर तक चिताएं चुन दी गयीं और उधर दूर-दूर तक कब्रें खोद दी गयीं। शहर की तरह यहां भी समूह-दाह या एक-साथ दफन की बात उठी थी पर चली नहीं। अलग-अलग चिता और अलग-अलग कब्र बनाने का खर्चा उठाने वाले लोग और संस्थाएं आगे आयीं। और कब्रें खुदने लगीं··· और चिताएं चुनी जाने लगीं। आखिर दो ट्रकें आकर रुकीं और उनमें भरी लाशों को उतारकर कतारों में लगा दिया गया। हिन्दू उन्हें चिता पर चढ़ाकर और मुसलमान उन्हें दफन करके ठिकाने लगाने लगे। सब लाशें जब ठिकाने लग गयीं तो उधर एक कब्र और एक चिता खाली रह गयीं।

इधर वालों ने अपने सिपुर्द की गयी लाशों की कब्रों को गिना तो उधर वालों ने चिताओं को। एक मुर्दा इधर कम और एक उधर फिर क्या था। झट अगुआ आगे आये और लगे इलजाम लगाने।

—तुमने हमारी लाश फूंक डाली।

—तुमने हमारा मुर्दा गाड़ दिया।

—नहीं हमने ऐसा नहीं किया, तुम्हीं उठा ले गये हमारी लाश। —

—नहीं तुम झूठ बोलते हो। हमारा मुर्दा तुमने दब कर दिया।

—ऐसा है तो देख लो हमारी कब्रें तख्ना उखाड़ के।

—तुम भी संभाल लो हमारी चिताएं। देख लो कोई लाश हो तुम्हारी, मुर्दे अभी पूरे फुके नहीं हैं।

—तो चलो, खींचो चिता की लकड़िया—करो उन्हें ठंडा, हम देखते हैं।

—तो, तुम भी हटाओ तख्ते-पत्थर कब्रों के और निकालो कब्रों से मुर्दे। हम भी तलाश करते हैं···खोदो कब्रें अपनी।

—हम अपनी नहीं तुम्हारी कब्रें खोद देंगे। कहते क्यों नहीं कि मुर्दा तो बहाना है, मकसद तो मसान की हदें आगे बढ़ाना है।

—तुम साफ-साफ क्यों नहीं कहते कि एक लाश कम बताने के पीछे चाल है तुम्हारी कब्रिस्तान को और आगे फैलाने की।

—तुम झूठे हो।

—तुम मक्कार हो।

—तुम तुर्क हो।

—तुम काफिर हो।

और देखते-देखते ही कब्रिस्तान के फैलाव और श्मशान के पसार को बढ़ाने के लिए जिन्दगियां उतारू हो गयीं मरने-मारने के लिए, तभी टंटा-झगड़ा सुनकर बाबा ऊधमसिंह बस्ती से बाहर आये। और कमजोर पगों पर अपनी छुई-मुई सी काया को बैसाखियों पर साधकर दोनों दलों के बीच आ खड़े हुए। बोले :

—सत श्री अकाल। बीरों मेरे! मौत की नफरी अभी पूरी नहीं हुई! जो एक-दूसरे को मरने-मारने पर उतारू हो। लो, मैं खड़ा हूं तुम्हारे सामने—चाहे मुझे जला दो या गाड़ दो। यहां हिन्दू-मुसलमान मुर्दे ही आते देखे सुने हैं···किसी सिक्ख का मुर्दा अभी यहां आया भी नहीं। मेरे मीतों! मेरा दोस्त डेविड भी मेरी झुग्गी में आखिरी सांसें गिन रहा है, उसे भी थोड़ी देर में ले आना—तभी हिन्दुस्तान का मुकम्मल नक्शा उभरेगा यहां। इतना कहकर वह हांपे और फिर ठंडी सांस लेकर बोले —जाओ-जाओ ले आओ उसे मर गया होगा वह अब तक, सांस तो उसकी

तभी उखड़ चुकी थी। सलाम भाई! तुम उसे दफना देना और बादशाहो! मैं तो खड़ा हूं तुम्हारे सामने, चढा दो मुझे चिता पर और कर लो अपनी गिनती पूरी। वैसे भी सब हितु-मीत मर गये। मैं क्या करूंगा अपनी बची-खुची सांसें सहेजकर। तुम नही तो लो, मैं ही···इतना कहकर वह वैसाखिया टन्नाते हुए लपके जलती चिता की ओर। तभी दोनों धड़ों के लोगों ने उन्हें लपककर बाहों मे भर लिया और सर झुकाकर उनके सामने खड़े हो गये। बाबा ने वैसाखिया फेंककर एक हुलास के साथ सभी को अपनी बाहों में भर लिया। ऐसा लगा जैसे जिन्दगी फिर से लहलहा उठी।

रस्सी का सांप

—वो करमजली कुएं में छलांग मार गयी तो उसकी जाई को भी कुएं में धकेल दूं ? अब तू बोल भाई मत्तार ! जोर-जबर है कि नी ? रुक्मी को उस नसेड़ी बिसेसर के पल्ले कैसे बांध दूं। वो चालीस पार और जे बछिया। संतोखे ने बीड़ी झाड़कर एक सुट्टा लगाया।

—पर संतोखे, इससे छोटे ठाकुर का क्या सरोकार ! मेरी बेल-लतर जिस पेड़ पे चढ़ाऊ, मेरा बेटा पूत जिस ठौर जहां चाहूं ब्याहूं। तेरी बेटी है रुक्मी, उसके हाथ तू चाहे जहा पीले कर।

—अब मुझे बताना पड़ेगा सब। हवेली खेत में जो इधर खेल-खांडा चले उसे तू नी जाने भला ?

—वो तो है ही, आये दिने जवान-जट्ट मुस्टंडे जीप-गाड़ी में लदकर आवें। ठाकुर के इस खेत मे तो कभी उस फारम में दारू उड़ेलें, भाड़पन करें। सुना तो जे भी था कि तेरी घरवाली गाव के कुएं में बिना बात नहीं कूद पड़ी ! लाज मर्जाद पर आंच उसने नहीं आने दी !

—अब वो मुझसे कुछ कहती-सुनती तो तनीड़ा भी पड़ती। भुनगे की भांत मर गयी···तू जाने गांव पचायत ने जो न्याव तोला···संतोखे की ब्याहता मरी मिली है कुएं मे, चाहे घर क्लेस से मरी हो चाहे और जैसे। उसकी लहास से कुए का पानी जहर मिला गया है···बस तू जाने, इधर तो अंटी मे इतना भी नहीं कि उसे ठिकाने से चिता चढा दे। ऊपर से भरा कुआं उलीचने का दंड।

—आखिर तो पीढ़ियों से हवेली की सेवा-टहल मे है। छोटे ठाकुर ने कुछ···

—हां···हां हवेली की दुहाई फेरी तो छोटे ठाकुर ने गुमास्ताजी को इसारा कर दिया।

—अरे काहे का इसारा ! तू सतोखे बात बिखेरे मत, सीधे-सीधे बता। रंगे पाट सूख गये। उन्हें समेटना-गिनना पड़ा है। अकेला जो हूं।

—अब सब सीधे-सीधे नंगे बोल में बता दूं और कर लूं सामान अपने भी मरन का। अब जो कुछ हुआ सुन सफा, गुमास्ता बोले—छोटे ठाकुर महरबान हैं जो चाहे से ले, पर रुक्मी को बिसेसर से ब्याह दे। रुक्मी भी हवेली में रहेगी, बिसेसर भी। ब्याह-सगाई, कुएं की सफाई सब हवेली से हो जावेगा। मैं खोट समझ गया और पलट आया···आगे जो कुछ हुआ जगत जाना है···

—जो हुआ बुरा हुआ, पर सतोखे तैन्ने···

—जै ही, के अपने बचावे को महाजन के सागड़ी घाल दिया, बंधक रख दिया। तो सुन मैं अपने बेटे को तो बंधक रख सकूं हूं पर अपनी बेटी की आबरू को नहीं बेच सकूं। आज रुक्मी अपनी जात के बेटे के घर गिरस्ती मांडे बैठी है। उसके हाथ पीले नहीं करता तो ! उसकी मां ने भी तो इसी खातिर जान दी···अब जो हो गया भुगत लेंगे हम बाप-बेटे··· पर बो मरा महाजन नाम का ही जालम चंद नहीं, आदत का भी जुलम भरा है। अपने रामजसवा को दुःखों में डुबो दिया मैंने। महाजन उसे अपने दूजे गांव वाले खेतों में रखे है, मैं तो उसकी सूरत को तरस गया। रामजसवा तेरे से खूब ही हिलामिला था न ? सत्तार भाई क्या हजार-आठ सौ की रकम इत्ती भारी होवे कि उसके नीचे दब के भोला मानुस दब-पिल के रह जावे ?

—नमाज का बखत लगा है। अब देख तू ही···

—मैं भी चलूं सत्तार अपने घर। घर क्या भूतों का डेरा, ब्याहता मर बैठी, बेटी अपने घर और बेटा ? दोनों उठ खड़े होते हैं। जब दोनों अलग हुए तो मंदिर के झालर, घटों की टनटनाहट और अजान की गूंज सांझ के झुटपुटे में गलबहियां ले रही थीं।

—आज तो बड़ी अबेर कर दी···कहां अटक गये थे···सत्तार को आया देखकर खाट में पड़ी उसकी घरवाली ने पूछा।

—अब रह गयी है उमर हमारे अटकने-भटकने की···अरे सोच बीस हाथ लंबे और दो हाथ चौड़े कपड़े पाट को कैसे तो अकेला आदमी रंगे, कैसे निचोड़े और कैसे सुखावे ! रीढ की हड्डी तेरी खिसक आयी और कमर मेरी टूट गयी। ऊपर चढ़ेंगी तो गिरेगी ही नीचे।

—अरे मैं कौन आसमान के तारे तोड़ने ऊपर चढ़ी थी···तुम्हारे ही तो जे रंगाई-छपाई के छापे सहेज रही थी···पैर फिसल गया।

—खातून···बच गयी···मर जाती तू···

—अभी कौन जीती हूं, जिंदा काठ-कप्पड़ के कफन मे बधी पड़ी हूं। वह खासी हो उठी और सीने तक चढ़े प्लास्टर मे कुलबुलाकर रह गयी। सकीना बेटी आ गये तेरे अब्बू···चा का पानी चढ़ा दे।

—पानी चढ़ाने की तूने भली कही···उस गरीब का पानीपत तो उतरा ही था।

—किसकी बात कह रहे ?

—अरे उसी संतोखे की। वो तो हुमयारी की उसने। लुगाई की लाज तो लुटी ही, बेटी की आबरू भी गयी ही थी। बेटे को बंधक रखना पड़ा बेचारे को, ऊपर से करज सर पर और हो गया।

—उसके बेटे का नाम क्या है भला-सा ? रामजसवा। याद आया। मैं-मांद-मजबूर हूं। तब तक तुम नही रख सकते थे उसे अपने पास। पाट सुखाने-सहेजने में तो तुम्हारी मदद कर ही देता···कैसी भोली सूरत··· उसकी, देख के छाती जुड़ आवे है मेरी तो।

—आज संतोखा का दुखड़ा सुन के तो मेरी भी आंखें भर आयी। इसी गांव में जन्मे, खेले और साथ-साथ बड़े जो हुए है। धर्म-मजहब के जो बखेड़े न होते तो मैं रामजसवा को गोद रख लेता···पर···वह कुछ आगे बोलता कि सवाल हुआ—फिर ? इस काठ-कफन मे तो मेरा छुटकारा अगले तीन महीने से पहले नहीं होने का। सकीना घर देखे तो तुम्हें तपती, तुम्हारे साथ काम में लगे तो घर घाटा। और अब में नहीं तो रामजसवा को पगार पर ही अपने पास न रख लो। फेंक दो उस सूद-माऊ बनिये के पैसे और लिवा लाओ उसे अपने कने। मासूम की भी सासत कटेगी। संतोखे को राहत और तुम्हें मदद। समझो पेशगी दे रहे रामजसवा को पगार अपनी।

रकम की जब भरपाई हो जाये रामजसवा अपने घर हम अपने घर ?

—बात तो सौ टच है···पर वो बनिया-वक्रकाल और खिच जायेगा। वैसे ही जब से मैंने अपना माल बस से सीधे सहर की पेढी पर पहुंचाना सिरू किया है वो खार खाये बैठा है, सत्तार ने सोचते हुए कहा।

—अब यूं डरने लगे तो तन के कपड़े भी बैरी जाने कब आग पकड़ लें। ऐसा सोचें? फिर कौन तुम खुद जाओगे उसके कने। सतोखी अपने बेटी-दामाद के साथ जाकर रुपया भर देंगे महाजन को और लिवा लायेंगे रामजसवा को। घरवाली ने सत्तार को सुझाया।

—वो तो ठीक। जब रामजसवा कल मेरे कने काम करेगा तब तो पता चलेगा ही जालम को।

—कहा ना, अब यूं डरो तो परछाईं मार गेरे आदमी को···मैं कहूं तुम तो संतोखी भैया से कल जिकरा कर देखो। तभी सकीना चाय लेकर आ गयी। दोनों हाथों में कप थे। और आंचल था कि कंधों से खिसका जा रहा था। उसे यूं झिझका देकर सत्तार ने निगाह नीचे किये कप थामे और वह आंचल महेज खाट के पास खड़ी हो गयी।

पखवाड़े बाद ही गांव वालों ने देखा कि नदी के किनारे पीले-लाल कपड़े के पाट यहा-वहां फैले हैं। कपड़ों की लंबी पट्टियों का एक छोर सत्तार के हाथ में है और दूसरा रामजसवा के। रंग गये कपड़ों की गत मिलाकर दोनों हवा में झोले देते हुए सुखा रहे हैं। सत्तार इधर मगन है, तो रामजसवा उधर राजी। उसे धूप में कपड़े सुखाने का काम खेल-सा लगा। वहां महाजन के खेत पर तो दिन भर भैंस-गाय का सानी-पानी गोबर-उपले करने में ही बीत जाता और फिर खाने वो ही लाल-ज्वारी। बापू की सूरत वह देख नहीं पाता। कई-कई दिन निकल जाते। अब वह खुला पंछी था। जी चाहता तो गांव 'किसन टोले' चला जाता नहीं तो यहीं 'हसन टोले' सत्तार के यहां ठहर जाता। दोनों में दूरी कितनी थी! नदी के इस छोर पर किसन टोला तो उस छोर पर हसन टोला। खातून चाची भी तो उसे कितना चाहती थी। अपने ओसारे में उसके लिए अलग

से टाट-दरी और कंबल रखवा दी थी उन्होंने। उसे देखते ही हुक्म दागते —सकीना बेटी, रामजसवा को गुड़-चना दे दे···वो तिल के लड्डू भी।

रामजसवा के गाल निकल आये। सत्तार को भी सहारा लगा। पलस्टर मे भरी खातून हुलास भरी रहने लगी। सकीना को भी बतियाने के लिए छुटका मिल गया। रामजसवा था तो समझू, पर आता-जाता उसे कुछ नहीं था। दस तक गिनती भी नहीं। आती भी कैसे! उसे सिखाया किसने था! रामजसवा सौ तक गिनती और इस उस पेंढ़ी के मान का आंक लगाना सीख जाये तो सत्तार को बड़ी मदद मिल जाये। रामजसवा सुखाये पाट की तह लगाता तो सत्तार को ही उन्हें गिनना पड़ता। टेढ़े-मेढ़े अंक डालकर अलग-अलग पेंढ़ियों का माल एक तरफ करना पड़ता। रामजसवा को यह जुगत आ जाये यही सोचकर उसने रात को मस्जिद के चौबारे में चलने वाले मदरसे में उसका नाम लिखवा दिया। दिन के स्कूल में तो उसे वह भेज नहीं सकता था, दिन भर काम मे जो लगा रहता था।

महाजन जालमचंद आन गांव उगाही पर गये थे। सीधी बस मिली नहीं, इसलिए हसन टोले मे ही उतर गये। सांझ का झुटपुटा गहराने लगा। तेज-तेज कदम बढ़ाते वह किसन टोले अपने घर को जाने वाले मोड़ पर पहुंचे थे कि उन्हें रामजसवा दिखाई दिया। सस्ते चेक का कमीज, धुले हुए लट्ठे का पजामा और सिर पर सफेद गोल टोपी, बगल मे बस्ता-पाटी। जालमचंद ठिठक गये।

—किधर को रामजसवे? बोल की नरमी भी इतनी कड़वी थी कि रामजसवा सहम गया। और फिर जालमचद की लाल आंखें देखी तो जहां का तहां ठुक कर रह गया। चुप। एकदम चुप।

—अबे बोल भी···मस्जिद मे जा रहा पढ़ने? रामजसवा सभला और गरदन हिलाकर हामी भर दी।

—क्या पढता है मस्जिद मे···जो सब पढ़ते है, वही ना? उसने फिर हामी भर दी।

—लंबी दाढ़ी वाले मौलवी साहब ही पढ़ाते है न! वह कुछ बोलता इससे पहले ही जालमचद फूट पड़े—मुह से क्यों नही बोलता? रामजसवा डर गया। बोला—जी हां मौलवी···

—तेरे मदरसे जाने की बात तेरा बापू जाने है ?

—पता नही । अब उसकी टागें कांप रही थीं। जालमचंद आगे बढे और उसका बस्ता झटक लिया। देखा। पहाड़ा-पट्टी थी, एक बारह-अखड़ी की किताब थी, और स्लेट-बत्ती भी। बस्ता उसे वापस थमा दिया और बोले—जा। रामजसवा दो कदम आगे ही बढ़ा था कि गरजे—ठहर। और लपककर उसकी टोपी उतारकर अपनी जेब मे रख ली।

जब बिसूरता हुआ रामजसवा खातून चाची के पास पहुंचा तो वह चिहुंक पड़ी—क्या हुआ रे, किसने मारा-पीटा ! तभी सत्तार भी वहां आ गया और सकीना भी। रामजसवा चुप था, पर उसकी आंखों से आंसू झरे जा रहे थे। सकीना ने उसे अपने से सटाते हुए पूछा—तेरी टोपी कहा गयी भैय, हमने आज ही तो बनायी थी तेरे लिए।

—टोपी तैने बनाई थी सकीना, वो मेरे वाली बाजार की टोपी को क्या हुआ ? वोही तो पहनकर जाता था मदरसे।

—वो···वो गदी हो गयी थी। फिर जगह-जगह से फट-कट भी तो गयी थी। इसलिए नयी बना दी इसके लिए मैंने।

—कैसी थी टोपी जो तूने बनायी ?

—अरे अब्बू टोपी थी कपड़े की—टोपी जैसी टोपी। वैसी ही जैसे खाला के अहमद और महमूद पहनते हैं।

—तो बस···हो गया। सत्तार बुदबुदाया, फिर रामजसवा को झिंझोड़ते हुए बोला—बोल रामजसवे वो टोपी कहा गयी ? बता, कौन ले गया वह टोपी ?

—वो···महाजन सेठ ने ले ली। मिल गये थे टोले मे। अभी जब मैं मदरसे जा रहा था। इतना कहकर वह खातून के पास आ गया और खाट का पाया पकड़कर बोला—चाची, हमें वो जालम सेठ वापस तो नहीं ले जायेगा ?

—नहीं रे नहीं। उसने उसके सर पर हाथ फेरते हुए कहा—डर मत, मेरे खाट से उठने भर की देर है।

—अरे, तू खाट से उठेगी, उससे पहले जालमचद मेरी खाट खड़ी कर देगा। उसने मुझे पहले ही धमकी दे रखी है, सत्तार घबराकर बोला और सर पर हाथ मारकर वहीं बैठ गया।

—अरे कुछ बताओगे भी। टोपी बनिया ले गया तो कौन-सा हमारे सिर से आसमान हट गया ?

—*आसमान तो जहां है वहीं रहेगा। कहीं गाव-आंगन में आग न लग* जाये। आज जो हवा मुल्क में चल रही है, उसे तू क्या जाने !···फिर जालम जो करे, वो ही कम।

एकाएक ही सत्तार के घर में गहमागहमी मच गयी। उसका छोटा भाई कुवैत से बबई आ गया है और अगली तारीख जुम्मे को उसके यहां पहुंच रहा है। तार मिला था सत्तार को। वह खुशी से फूल गया और अगले ही दिन आसपास के चारों गांवों में अपने सगों को कहलवा दिया—उसके यहां पीर की नियाज और मिलाद है, तशरीफ लायें। इससे अच्छा मौका और क्या होगा कि नियाज नजर की खुशी में उसका भाई शरीक हो ले।

जुम्मे की आड़े आज चार दिन रह गये थे और चार-पाच सौ आदमियों के खाने का इतजाम करना था। शहर से मिलाद पार्टिया आनी थीं। शहर-काजी-मौलवी भी। सत्तार सौदा-सुलफ जुटाने में और बाजार के दूसरे कामों में जुटा रहता। इधर कूटने-पीसने, बीनने-छानने के कामों में सकीना और रामजसवा जुटे थे। खातून खाट में पड़ी इस-उस काम के लिए उन्हें कहती रहती। रामजसवा जो काम में जुटा तो तीन दिन तक सत्तार के घर से बाहर न निकला। सत्तार जब शहर के रेलवे स्टेशन से अपने भाई को जीप में बिठाकर घर लौटा तो जुम्मे की नमाज हो चुकी थी और उसका घर-आगन मेहमानों से भरा था। मस्जिद के लंबे-चौड़े अहाते में ही कुर्बानी हुई। वहीं खाना बना और दावत हुई। और फिर देर रात तक मिलाद होता रहा। मौलवी साहब ने वाज फरमाया। अपने मजहब को मजबूती से निवाहने की बात भी की। और यूं ही रात आधी से ऊपर ढल गयी। सुबह हुई और नाश्ते-चाय के बाद सत्तार ने सबको घर पने

भाई को रोकना चाहता था, पर बंबई के एजेंट से बुलावा आ गया था। इसलिए उसे आज ही विदा करना था। वह उसे पहुचाने के लिए शहर तक उसके साथ गया।

मंदिर के लिए पुते-खुले आंगन में सभा जुड़ी थी। ऊपर मंच पर छोटे ठाकुर विराजमान थे। उनके पास ही महाजन जालमचंद त्यौरिया चढ़ाये जमे थे। मुट्ठिया कसी हुईं, जबड़े भिचे हुए, पर जीभ चुप थी। आंखे आग की बोली बोल रही थी। आसपास गाव के और शहर के भी कुछ लोग आये थे। गांव के लोग कुछ समझ नहीं पा रहे थे कि तभी हुकार हुई जालमचद की—आर्य धर्म की जय, श्रीमान ! ठाकुर साहब भी पधारे हैं। आप और मैं भी। वो इसलिए कि हम माथा जोड़कर सोचें कि यों कब तक चुपचाप बैठे हम अपने धर्म का नाश होता देखते रहेंगे। अपने ही किसन टोले का एक नासमझ हिन्दू बालक रामजसवा को कल हसन टोले मे मुसलमान बना लिया गया है।

—कल हसन टोले में जो कुछ हुआ, किसी से छिपा नहीं। बकरे कटे, मौलद-दावत हुई, बखान हुए और रामजसवा की खतना-सुन्नत करके उसे मुसलमान बना दिया गया। जालमचद उफनते हुए बोले, सुनकर लोग सन्नाटे में आ गये। सबकी आंखें संतोखी को ढूंढ़ रही थी। वह एक कोने में सिर झुकाए खड़ा था। सोच में था कि सब हो क्या रहा है ?

—संतोखी हमारे सामने है, रामजसवा उसका बेटा है। उससे बात पूछी जाये तो दूध का दूध और पानी का पानी अभी सामने आ जायेगा।

—संतोखी आगे आओ। ठाकुर गरजे। वह आगे आया तो उन्होंने डपटकर पूछा—क्यों संतोखी, क्या सत्तार मियां ने तुम्हें रुपया दिया था ?

—दिया था पर वो तो···

—बस···बस जितना पूछें उतना ही बताओ। जालमचद ने उसे टोका।

—सत्तार तुम्हें रामजसवा की पगार महीने के महीने देता है ? ठाकुर साहब ने सवाल किया।

—वो उसने पेसगी दे रखी है। उसी में से सब···

—छोड़ो···बताओ सत्तार ने रामजसवा को मदरसे भेजने की बा बतायी थी तुम्हें ?

—नही।

—रामजसवा को तुमने सत्तार के यहां बंधक रखा है ? नहीं, तो तु उससे पगार क्यों नही लेते ?

—बोला ना मैं कि उसने बड़ी रकम···संतोखा आगे कुछ कहत उससे पहले ही ठाकुर साहब ने उसे रोक दिया और पूछा—रामजसव तुम्हारे पास आता है ?

—हां, अठवारे-चौथे आता ही है।

—अभी कितने दिन से नही आया ?

—सनी-सनी आठ···आठ दिन से तो नही आया।

—आता कैसे बेचारा, खतना मे खाट पर पड़ा था···तुम्हें मालूम है रामजसवा की खतना हो गयी। अब उसका नाम रमजानी है। जालमचंद ने तुर्रा मारा।

—मुझे नही मालूम। सत्तार मेरे बचपन का साथी है, गोठिया है। वो ऐसा नहीं कर सकता। वो और उसकी घरवाली रामजसवा को अपने बेटे की तरह माने हैं।

—संतोखे, अब तू रो सिर पकड़कर। रामजसवा अब रमजानी बनकर उनका ही बेटा हो गया। तेरे इहलोक और परलोक दोनों बिगड़ गये, पर हम चुप नही बैठेंगे।

सकीना खिलखिलाती हुई रामजसवे को अम्मी की खाट के पास ठेले चली जा रही थी, पर वह पीछे खिंचा जा रहा था।

—अरी अम्मा तनी देख तो अपने रामजसवा को···पूरा मौलो साहब लग रिया। दाढी भर की कसर है। वह फिर ठठाकर हंस पडी। खातून ने जो आंख खोलकर देखा तो वह भी हंसी नहीं रोक सकी। सामने शलवार-कमीज पहने और सिर पर दुपल्ली टोपी लगाये रामजसवा खड़ा था।

सकीना की पकड़ ढीली हुई कि वह भागा चौवारे में पहने कपड़े उतारकर अपने धारने के लिए। सकीना ने उसे अपनी और अपने वापू की कसम दिलाकर खेल-खेल में उसे वो शलवार और कुर्ता पहनने पर मजबूर कर दिया था, जो उसके चाचा महमूद के लिए लाये थे और अपने हाथ से दोपल्ली उसके सर पर रख दी थी।

अभी मा-बेटी की हंसी थमी भी नहीं थी कि उन्हें अपने घर-आंगन के सामने हल्ला सुनाई दिया। कुंडी-किवाड़ हिले तो शलवार-कमीज उतारते-बदलते रामजसवा के हाथ रुक गये और वह जैसा खड़ा था, वैसा ही लपका और कुंडी सरका के पट खोल दिये।

सामने आदमियों का ठठ था। जालमचंद उसे देखते ही बोला—लो भाई, अपने रामजसवा को मियां रमजानी के भेस में खुद ही देख लो। और उसने रामजसवा का हाथ खींचकर चौवारे से बाहर निकाल दिया। उसे देखकर गांव वाले उबल पड़े—कहां है सत्तार, निकालो उस छापे-छीपे को। सत्तार-सत्तार···के हल्ले से हवाएं हिल गयी।

सत्तार अपने भाई को छोड़ने बाहर गया था। अचानक हुए इस हमले से सकीना बौखला गयी। उधर जालमचंद की जकड़बंदी में फंसा रामजसवा 'बचाओ बचाओ' की पुकार करता हुआ चिल्ला रहा था। अम्मा तो खाट से लगी हुई थी। कौन बचाये अब? सकीना के दिमाग में कौंध हुई और वह पिछवाड़े से भागी संतोखे काका के घर की तरफ।

—रामजसवा को मंदिर ले चलो और उसके साथ सत्तार के पिल्ले की भी शुद्धि करो। पिलाओ साले को गो-मूत, डालो इसके मुंह पर सूअर की लीद।

—अबे शुद्धि-शुद्धि चिल्ला रहा है, बुद्धि क्या गयी तेरी हज करने। खतना सुन्नत के बाद शुद्धि नहीं होती···एक हिंदू जो कम हो गया, सो हो ही गया।

—तो? सत्तार की बेटी की तो शुद्धि हो सकती है ना। [illegible]। एक हिंदू कम हुआ है, तो एक तुरक भी घटे। बाहर से आया एक आदमी चिल्लाया। इतना सुनना था कि महाजन के आसामी सत्तार के घर में घुस गये। पीछे और लोगों का रेला भी लग गया। [illegible]

मारा, पर न सत्तार मिला, न उसकी बेटी। बस पलास्टर में जकड़ी उसकी घरवाली चिल्ल-पों मचाये हुए थी...

—बिहारी लाला क्या गजब हो गया, बताओ तो कौन गाय मार दी हम लोगों ने। गांव के एक जाने-पहचाने आदमी को घर में घुसा देखकर खातून ने पूछा।

—अब के गाय नहीं हमारा धरम मारा है तुमने।

—कैसी बात करते हो। कल तो नियाज नजरा थी हमारे यहां... अपना-अपना धरम तो सभी पाले हैं इसमें...

—रामजस को रमजानी बना के धरम पाले है कुतिया। तभी आवाजें आयीं—भाग गया तुरक अपनी बेटी को ले के...लगा दो आग। फूंक दो घर। लगाओ लंपा।

सत्तार के घर के चौफेरे जो हुडदंग मचा तो हसन टोले में मोर्चाबंदी हो गयी, अल्लाह हो अकबर का नारा बुलंद हुआ और इधर से ईंट तो उधर से पत्थर बरसने लगे। फिर तलवार-छुरे चमकने लगे। ऊपर से बात उड़ी, किसन टोले के जवान दुसाध सत्तार की बेटी को उड़ा ले गये। कोई कहता गाय का पेशाब उसके मुंह में उलट दिया काफिरों ने, कोई बताता उसके मुंह में सूअर की हड्डी ठूंस दी...दूसरे गांवों और शहर से दिन में आये कुछ लोग जो हसन टोले में ही ठहर गये थे, बात को अलग-अलग रंग दे रहे थे। देखते-देखते दो धर्मों में जंग छिड़ गयी।

—यहां इन लोगों को निपटने दो...चलो हम उधर चलते हैं जहां सत्तार की बेटी बंद है। उसे काफिरों के पंजों से छुड़ाना हमारा फर्ज है। शहर में आये एक दाढ़ी वाले जवान ने कहा—हां-हां चलो, सत्तार की बेटी इस्लाम की बेटी...जिसने उसकी इज्जत पे हाथ डाला, हम उसे कच्चा चबा जायेंगे ?

बात ही बात में किसन टोले में भी थू-थू मच गयी। मरद तो इधर हसन टोले में डटे थे, पीछे औरतें-बच्चे ही थे। हमलावरों ने उन्हीं पर जुल्म तोड़ा। जो मिला, उसे धर दबोचा। बूढ़ों को घर से घसीटा, औरतों के

आंचल-पल्लू फाड़ डाले और बच्चों को ठोकरों से लुढ़का दिया। रामजसवा के साथ खेले एक छोकरे ने इशारा किया तो जनून ने भरे उस शहरी नौजवान की आंखों में खून उतर आया। उसने लात जो मारी तो दोहरी की रोक भीतर जा पड़ी और सतोखे का घर सुरसुरा गया। सामने जो सकीना ने खून से रंगा आदमी देखा वह चीख पड़ी—बचाओ-बचाओ काका। वह सतोखे की ओर लपकी, तभी आने वाले ने उसे कोने में धकेल दिया।

—तो तू है सकीना, सत्तार की बेटी···कमीने कुत्तों ने तुझे यहां डाल रखा है इस खबीस के झोंपड़े में···और उसने आव देखा न ताव, कांपते हुए संतोखे के पेट में दो लात जमायीं कि वह वहीं लुढ़क गया।

—नहीं···यहां सतोखी काका नहीं लाये मुझे यहां···मैं···रामजसवा को बचाने···

—दके मत···खबर है कुछ! तेरी मां को जिंदा जला डाला जालिमों ने।

—नहीं···अम्मी···अम्मी नहीं। और वहीं गिर गयी।

—यार लड़की तो खूब गोरी गदराई है···क्या खयाल है।

—नीयत हराम इस्लाम की बेटी है। हया नहीं।

—इस्लाम को बीच में मत उछाल समझा···गाय का पेशाब पीने और सूअर की हड्डी मुंह में चले जाने के बाद भी बच रहा है इसका ईमान···कौन कहेगा अब इसे मुसलमान?

पहले ने सोचते हुए दूसरे की तरफ देखा तो उसने पलक का कोना दबाया—अपनी मोटर माइकिल बाहर खड़ी है। देर से अंधेर है। चूक मत···अपन कौन गैर है···फिर अपनी लड़की को गायब पायेंगे, तो मुसलमान काफिरों से बदला भी कसकर लेंगे। चल हो जा चालू। इतना कहकर उसने सकीना को बाहों में भरने के लिए हाथ बढ़ाये तो वह फुंकारती हुई उठ बैठी—छोड़ दो, मैं खुद चली जाऊंगी अपने घर।

—तेरा घर अब कहां, चल हम छोड़ देते हैं तुझे मस्जिद में मोटर साइकिल पर। दूसरे ने बात को संभालते हुए कहा।

—नहीं···नहीं सतोखी काका···नहीं। अकेली चली जाऊंगी मैं।

—गांव में आग लगी है। अकेली मरेगी। चल। और उसने उसे हाथ पकड़कर खड़ा कर दिया। और फिर धकेलकर झोंपड़ी के बाहर ले आये। सकीना लाख चिल्लाती-चीखती रही। दोनों ने मिलकर उसे पिछली सीट पर डाल लिया। एक ने उसे दबोचकर मुंह पर हाथ रख दिया और दूसरे ने गाड़ी स्टार्ट कर दी।

किसी ने नहीं देखा, पर धुआं-धुआं हवाओं ने जाना कि मोटर साइकिल हसन टोले की ओर न जाकर शहर की ओर मर्राटे से बढ़ी। तभी हल्ला हुआ पुलिस···पुलिस। हमलावर होशियार हुए और सकीना को वहीं पटककर शहर की तरफ भाग खड़े हुए।

धूल सनी बाल बिखेरे रोती-बिसूरती हसन टोले की ओर गिरती-पड़ती चली जा रही थी सकीना। इधर रामजसवा किसन टोले की ओर दौड़ता आ रहा था।

पास आने पर दोनों की आंखें चार हुईं। सकीना थमी, रामजसवा भी रुका। आग···आग दोनों के मुंह से निकला और दोनों ने अपनी राह ली।

सकीना ने अपने घर से धुआं उठते देखा और अम्मी-अम्मी चिल्लाती हुई मस्जिद की तरफ लपकी। चारों तरफ सन्नाटा, कहीं कोई नहीं। पूरा टोला मस्जिद में पनाह लिए था। उसने मस्जिद के किवाड़ खटखटाये··· कोई जवाब नहीं। 'खोलो, खोलो, मैं सकीना···खोलो-खोलो', कहती हुई वह मस्जिद के दरवाजे पर झूल गयी, फिर भी किसी ने दरवाजा नहीं खोला।

—खोलो, सत्तार की बेटी है।

—नहीं काफिर हैं। खोलते ही हमला बोल देंगे।

—आवाज लड़की की है। सकीना ही है।

—धोखा देने के लिए लड़की का बोल काफिर नहीं बोल सकता ?

—हद हो गयी। बाहर सकीना ही हो सकती है। तुम्हें फिर के अलावा कुछ नहीं सूझता। भीतर दरवाजे पर और भी [illegible] हो गये।

—अपनी मुसलमान बच्ची बाहर

—अरे समझदार, अब कौन मुसलमान बच्ची रह गयी वो गाय का पेशाब पिया, सूअर की हड्डी चाबी। फिर काफिरों ने और भी कुछ किया होगा उसके साथ।

—सोचो-सोचो···सोचो, पुलिस की गश्त है, कर्फ्यू लगा है, पट खुलते ही खोलने वाले के जो गोली दाग दी गयी तो?

—खोलो-खोलो, किसन टोले के मंदिर के बाहर खड़ा रामजसवा बिलबिला रहा था। इधर चुप्पी उधर चुप्पी। पूरा टोला मंदिर मे शरण लिए था। उसने पूरे जोर से दरवाजे को झिंझोड़ा, हिलाया, पर कोई जवाब नहीं। उसने झुंझलाकर एक पत्थर उठाया और मंदिर के अंदर फेंक दिया—

—मैं हू रामजसवा खोलो ना। बापू मैं हूं रामजसवा।

—सतोंखे का रामजसवा है।

—नहीं, मुसल्ले हैं।

—तुरक हजार बोली बोलें, समझे नी।

—खुला नहीं कि हमला बोला उन्होंने। चुप···

—पत्थर हो पत्थर। एक हिंदू बालक बाहर गुहार करे और···

—इसकी समझ भी हो गयी मुसलमान।

—अरे रामजसवा नहीं रमजानी है। न बिसासें तो, झांक इस छेद मे से वो ही सत्तार वाला कुत्ता···सिकल सुन्नत वाले जैसी।

—अरे खोल के देखो, पूछो तो कुछ हुआ भी उसके साथ कि बस कपड़े ही।

—तूना पर तीने तो तू खोल देख। पुलिस घूमे है बाहर। देखते ही गोली मारने का हुक्म है। देख-देख जावे ना···भाग यहा से, तू रामजसवा नहीं रमजानी है मस्जिद के दरवाजे खटका जे मंदिर है।

सकीना मस्जिद की सीढ़ियों पर सिर मार रही थी। रामजसवा मंदिर की देहरी पर माथा ठोक रहा था। सकीना उठी, आसपास देखा और दौड़ी अपने घर की तरफ अम्मी-अम्मी करती। सामने रामजसवा खडा हुआ था,

वह लपका सामने। सकीना के पीछे मस्जिद थी। रामजसवा के पीछे मंदिर। जब सकीना हाफते-हाफते रुकी तो उसे सामने रामजसवा भागता हुआ आता दिखाई दिया। एक-दूसरे के पास जाने के लिए उन्होंने तेजी से कदम बढ़ाये। तभी 'ठांय !' एक गोली चली। पहली गोली का धुआं अभी हवा में ही उबल रहा था कि तभी दूसरी 'ठांयऽऽ' दूसरी गोली चली—कोई अपने घर से बाहर नहीं निकले। देखते ही गोली मार दी जायेगी। पुलिस की गाड़ी के भोंपू से एलान हो रहा था।

खेल, खिलाड़ी और मोहरे

—सलाम अलेकुल !

—वालेकुम सलाम ।

—ये घर क्यों उलीच रहे । लिपाई-सफाई भी—क्या बेटी का ब्याह पक्का हो गया ?

—गरीब की बेटी के ब्याह मे क्या होना है ? वो तो मां बनके पीहर आवे, तब्भी लगे के इसका ब्याह हो गया···ये सब तो दीपावली का मौका है न···

—तो यूं कहो, दीवाली मना रहे । तुम मुसलमान हो ?

—भैये, इसमें क्या हिंदू, क्या मुसलमान ! ये तो साफ-सफाई की बात है। फिर गाव का हर आंगन लिपा-पुता हो और मेरा टपरा-ओसारा खुदा-खुरचा रह जाये, कोई बात हुई भला ! करीम ने कहा ।

—अरे ! कैसे मोमिन हो जहां दीवाली के दिये की लौ देखना गुनाह है; वहीं तुम दीवाली पर दिये जलाओगे ।

—भैये, मैं दीवाली नहीं मना रहा, ना दिये···

—तुम नहीं मना रहे दीवाली, तो फिर तुम्हारे आगन-मुंडेर पर ये जलते-जागते दिये कहां से आ गये ?

—अरे ! बालक-टाबर ने पड़ोसी की दीवाली का दीया मेरे आंगन-मुंडेर पर धर दिया तो मजहब मे कौन अंधेरा हो गया ?

—खैर, तुम जानो, तुम्हारा ईमान । ये बताओ करीम, वो पंचायत के चुनाव होते हैं, किसे दोगे वोट ?

—ईमान की कही तो ईमान की सुनो, भाई, हम तो अब गिरधर साहू के आसामी है । गाढ़े-गिरानी में वो ही आड़े आवे हैं हमारे ।

—तो तुम मुसलमान हो के हिंदू को जिताओगे, और वो अपना गुलाम

सरवर…देख लो…समझ लो…चेताये दे रहे…चला मैं तो…कल फिर…कहकर वह जा चुका था। दीपक हंस रहे थे, कुछ दिये और थोड़ा तेल सहेज ले, फिर जलायेंगे! करीम के छोटे बेटे ने अपने नन्हे भाई से कहा और आनेवाले अंधेरे के लिए दिये बचा लिये गये।

—जै रामजी की…किस जुगत में जुटे हो भाई रामधनी!

—भाई, जुगत क्या, छोरों के लिए मेंहदी बांध रहे।

—मेंहदी क्या, छोटा ताजिया बना रहे?

—हां, बस यों ही समझो। कल नवीं तारीख और परसों ताजिये निकलने हैं। बेटी पे बेटी…घबरा गयी तो सामू की मां ने बोल दी मनौती-मन्नत—के हुसैन बाबा! अबकी कोख में बेटा आया तो हर बरस तेरे मेंहदी चढ़ाऊंगी…बस, सामू जनमा, तभी से…

—श्यामू हो गया तो क्या अधरमी हो गये? तुम हिंदू हो के हुसैन की मन्नत करो; ताजिये को मेंहदी चढ़ाओ!

—शहर की हवा खायें तुम लोग; कैसी बातें करो हो? साधु-सूफी, देवता-दरवेस, ऊंचे-पहुंचे लोग। कोई हिंदू-मुसलमान होवें? उनका धरम, सबका धरम। सब मजहब उनके मजहब। तब क्या हिंदू और क्या मुसलमान? रामधनी बह गया—वाह! सब धान बाईस पंसेरी? फरक कैसे नहीं। मैं पूछूं तुमसे; सूफी-फकीर तिलक लगावें? साधु-संन्यासी अजान पुकारें…नमाज पढ़ें?

—अरे, दोनों एक ही मालिक की माला तो फेरे हैं न?

—अब तुम उल्टी माला फेर रहे, तुम जानो, हमें तो ये बताओ कि पचायत चुनाव में वोट किसे दे रहे?

—छोड़ो; टेम पे देखेंगे, जिसे चाहेंगे, दे देंगे। ना गिरधर पराये, ना गुलाम सरवर दूजे। दोनों है तो अपने ही गांव के।

—भाई गजब! अपने गांव के [illegible] म के

तो नहीं दोनों। गिरधर हिंदू है और [illegible] …

—इस चुनाव में हिंदू-मुसलम

—वो यूं; के अब हम समझ गये हैं—मुसलमान हिंदुस्तान से अपना हिस्सा तोड के अलग मुलक बना बैठे तो आगे फिर हमारे देस में उनकी अड़धंग क्यों चले ?

—ये सब तुम समझो । यहां तो रोटी की कौर ही इतनी मोटी लगे है के उसे नापते-जोखते दूजी नी सूझे ।

—तो फिर वोट···सोचा तो होगा ?

—दे देंगे भैया···तुम्ही बोलो, किस पर ठप्पा ठोंक दें ?

—अब हम क्या कहें, अपना मन कहता हो; उसे ही ।

—धरम की पूछ रहे तो अपने आड़े वखत, आधी रात गुलाम सरवर ही काम आवें···

—और गिरधर साहू?

—गिरधर साहू तो हमें ब्याज में डुबो रहे, तुम्ही कहो···और चुनाव आ गये । गांव हिल गया । पार्टी-उम्मीदवार, वादे-इरादे, साख-सीख, नारे-निशान, परिया-झडे गांव की सास में अंस गये । चुनाव के बुखार ने ग्रस लिया । हरारत कम हुई तो ऐलान हुआ—गुलाम सरवर जीत गये, सिर्फ आठ वोट से । गिरधर साहू हार गये, सिर्फ आठ वोट से । फिर जलन-बदले का बुखार बढकर प्लेग बन गाव पर छा गया, अरे भाई ! कुत्ते की दुम और मजहब-धर्म को एक समझो । वो सीधी हो तो ये बदलें । उन्होंने मस्जिद की सीढियां उतरते हुए कहा—कुड़कुडा क्यो रहे मीर साहब, किसपे कमान तोड़ बैठे आज ?

एक सफेद डाढ़ी ने दूसरी सफेद डाढ़ी को टहोका देकर बात दागी—तुम अपने आस पास, आगे-पीछे. कुछ ध्यान भी देते हो या फिर मस्जिद मे बस···

—बस, अल्लाह से लौ लगावे हैं हम तो मस्जिद में । तुम बताओ आज की नमाज मे तुमने किसका ध्यान लगाया ? मीर साहब के लगोटिये हिकमत ने कहा ।

—बुड्ढा हो गया ये हिकमत, पर रहा 'हिक्को का हिक्की' । सुन्नत-हदीस तो जाने नही, पर नाम धर लिया मोहम्मद हिकमत । सिर टेक दिया सिजदे में, बन बैठे मुसलमान ।

—अब मीर साहब, इनकी तुम्हारी तो चले ही है। ये बताओ के आज हुआ क्या मस्जिद में ? दूसरे ने पूछा।

—अरे होना क्या था; कोई नाम बदलने से मजहब बदलता है किसी का ? वो ही रामधनी, जिसे गांव के सरपंच मोहम्मद सरवर ने रमजानी बनाकर चढा दिया मस्जिद मे। नमाज की सफ में हम सब हाथ बांधे खडे थे, वो हाथ जोडे खड़ा था, ऐसे जैसे मस्जिद में नही, मंदिर की आरती मे।

—भाई चले हम तो। ये मीर और हिकमत के तुर्रे-तुक्के हैं। बेटे कमाले है दोनों के, और कोई काम नही तो ये ही तो सूझेगा इन्हे। एक ने कहा और सबने राह ली, अपनी-अपनी।

शंख फूके जा रहे थे। घंटे टनटना रहे थे। ध्वजा फहरा रही थी। मंदिर मे जागी जोत उस छोटे से गाव के हिये मे जगमगा रही थी। गिरधर साहू के बेटे के बेटा जनमा है। एक सौ आठ आरती से देव-पूजन और बडी पर-सादी हो रही है, आज साहू की तरफ से। बाहर से ज्ञानी-पडित बुलाये गये हैं। उस छोटे से मंदिर में गांव उलट आया है, 'कैलास' भी। कल का 'करीम' पर आज का 'कैलास'। अपने भाई-बाधव, मजहब-ईमान सब छोडकर हिंदू बना है, देवता की शरण मे आया है। मंदिर में आज उसका पहला दिन है। शहर मे पढाई पढ़ रहे गाव के जवान-मुटियार उसे आगे कर के बढावा दे रहे थे। उसके पैर थे कि मन-मन भर के हो गये थे। उसे किसी ने फिर आगे ठेला। वह बढ़ा, तभी बिहारी पडित ने उसे पीछे धकेल दिया।

—करीमे, तेरा हिंदू भोत जोर मार रिया, पर तेरे हाथ तो जुड़े नही। कैसे हाथ बाधे खड़ा है, जैसे मदिर में न हो, मस्जिद में नमाज पढ़ने को खड़ा हो।

—पडित, बकते हो। अब यह करीमा नही, कैलास है। देखते नहीं, इसके माथे का तिलक ?

—मजार पर चढ़ा झंडा, झडा होवे, ध्वजा नही···

इतना कहकर उन्होंने उसे ऐसे घूरा कि कैलास के भीतर का करीम कसमसाकर रह गया।

करीम 'कैलास' बन गया था और रामधनी 'रमजानी'। गांव में यह अनहोनी हो गयी थी, कैसे ? गिरधर साहू कांटे की टक्कर में गुलाम सरवर से पचायत का चुनाव हार गये थे। तभी से दोनों के खेत-खलिहान, बैठक-चौक में एक ही चर्चा थी—अगर रामधनी का घर-परिवार गुलाम सरवर को वोट न देकर गिरधर साहू की चुनावपाती पर ठप्पा लगा देता तो गुलाम जीतता ? नहीं, कभी नहीं। और करीम, उसकी घरवाली, बेटे-बेटी के साथ ही उसके भाई-भतीजों के वोट गिरधर को चले जाते तो ? जीत गिरधर की ही होती ना। यह—और ऐसा ही सोचते-सोचते गिरधर, रामधनी से और गुलाम सरवर, करीम से इतने खिंच गये कि टूटन का डौल बन गया। फिर जले पर नमक का काम किया गुलाम सरवर की दावत ने और गिरधर साहू के भोज ने।

गिरधर साहू ने हार जाने पर भी जिगरा दिखाया। अपने समर्थकों-हिमायतियों को सत्कारने के लिए अपने खेत की पाल पर उन्हें भोज दिया। उनकी खूब मान-मनुहार की। सब साथी थे, करीम भी; पर रामधनी नहीं। उसे 'ब्रुलौआ' जो नहीं था।

उधर गुलाम सरवर ने बगीचे में अपनी जीत का जश्न मनाया। दावत दी, बड़ी दावत। सब थे—करीम भी, रामधनी भी। मांस-भाजी खाने वालों के लिए अलग जुगाड़ था और मिठाई-शाक वालों के लिए अलग प्रबंध। गांव बाहर के कुछ हिंदू-मुसलमान भी आये थे। सभी की मान-मनुहार में कोई कसर-चूक नहीं रखी गुलाम सरवर ने। बाहर के मौलवी भी थे और तबलीग के आदमी भी। खाने के बाद चुं-चहक हो ही रही थी कि किसी ने शोशा छोड़ा :

—ये रहे करीम, मियां तुफैल इनसे मिलें।

एक अनजान दाढ़ीवाले को सामने पाकर करीम ने झिझकते हुए सलाम किया। सलाम कबूलते हुए भूली बात को वे याद कर ही रहे थे कि उन्होंने

सुना।

—वही करीम···काफिर का सगा, मोमिन से दगा।

—तो आप हैं करीम!

—हां, आप ही हैं, वोट उधर, रोट इधर।

—मैं कहता हू शरफू, तुम हमें जलील मत करो। बुलाने पर आये हैं। करीम बिदका।

—हम क्या कहें। मुल्क के बड़े-बड़े मदरसों में दीन-मजहब पढ़े हैं मियां तुफैल, जो ये कहते हैं सभी मोमिन मानते हैं।

—तो क्या कहते हैं आप मिया तुफैल? तभी दो मजबूत हाथों ने करीम को आगे ठेल दिया। उसे काटो तो खून नही। तन-बदन झनझना उठा। कोई बोला—तौबा करो करीम कान पकड़ो! बस, न जाने कौन-सी बिजली हाथों मे दौड़ी कि करीम का हाथ मियां तुफैल की तरफ बढ़ा। फिर जो ववंडर उठा, उसमें करीम ही नही, उसका घर, यहां तक कि पूरी बिरादरी के रिश्ते-नाते बह गये। इतना ही नही, बेटी की सगाई छूटी। आसपास के चार गांवो मे उसका हुक्का-पानी भी बद हो गया।

—कल तो पाचों उंगलियां घी मे रही। रामधनी! पहले ने पूछा—और सिर? दूसरे ने छेका।

—सिर तो गया बकरे का। इन्होने गुलाम सरवर के यहां खूब हाथ साफ किये।

—तुम्हारा मतलब है रामधनी ने हलाली खा लिया, तुरक की छुरी के नीचे का मांस भकोस लिया। हमारी न्यात के हैं रामधनी? हम तो झटके का ही खावैं।

—तो गुलाम सरवर ने रामधनी का वोट भी लिया और ईमान भी। गिरधर साहू के गुमाश्ते का बेटा निरंजन बोला। अब रामधनी से नही रहा गया।

—*हराम का खाने वाले ही आज हलाल-हराम तोल रहे,* पर हमने अपने हाथ से अलग बनाया, अलग खाया। फिर हम अकेले थे वहां—और

गांव के चार भाई भी तो थे।

—क्यों रामधनी, तुरक को वोट और हमें गाली? गिरधर गुस्से का गोला निगलकर खाऊ आंखों से उसे लखते हुए बोले—यह बेर तुम्हें कहीं का नहीं छोड़ेगा रामधनी?

—महाराज, जल में रहकर मगर से बैर। हम तो दांतों के बीच जीभ जोग हैं। हमारी क्या हाँस, जो···

—चुप कर, हलाली खाकर हमी से तुरकपन करने लगा। तू, तेरी घरवाली, भाई, बेटे-बेटी और तेरे भड़काये दो-चार, और जाटव उसकी पेटी का पेट न भरते तो वह तुरक बन सकता था पंच-परमात्मा? बोल! गिरधर साहू ने सुबह-सुबह गुलाम सरवर के घर के बाहर तहसील की जीप खड़ी देखी थी और तभी से वह भीतर-ही-भीतर बौखलाये हुए थे, अब फूट पड़े—बस, अगली पूनों तक हमारा मूल-कर्ज के साथ लौटा दीजियो, नहीं तो खेत मेरे हल के नीचे होगा और तेरे बेटा-बेटी के सिर पे नंगा आकास? गिरधर घुमड़कर बोले और घूम गये।

गिरधर क्या घूमे, रामधनी की दुनिया घूम गयी। जात-पंचात और आसपास की गांव-बिरादरी से सदेसे आने लगे कि उसने तुरक के यहां हलाली खाया है, इसलिए उसका हुक्का-पानी बंद। अब रामधनी से कोई बेटी-व्यवहार बिरादरी में न करे। जो होना था, वही हुआ। बेटी का नाता टूटा और भाई गरासिये भी उससे दूर छिटक गये। वह गांव में रह गया अकेला। उधर अपनी बिरादरी से अलग करीम और इधर अपनी जात-न्यात से कटा रामधनी। गांव वही, गांव की गैल वही, वही चौपाल, खेत-खलिहान सब वही, पर सब तरफ सूना, अजाना, पराया और डसने वाला चौफेर अंधेरा। आने वाले नये चुनाव के लिए अभी से बिसात बिछ चुकी थी। एक छोर पर गुलाम सरवर और दूसरे पर गिरधर साहू। एक छोर पर राजनीति और दूसरे छोर पर भी राजनीति, पर कहने को इधर मुसलमान और उधर हिंदू। गुलाम रसूल, गिरधर साहू की गोटी पीटना चाहते थे और गिरधर साहू; गुलाम रसूल की। कौन पिटता है इसकी परवा उन्हें नहीं।

गुलाम सरवर ने करीम के खेत-छप्पर पर कुर्की इजरा करवायी, वह

पहचान नहीं बना सका। छोटे से गांव की जानी-पहचानी गैल पर वे अन-जाने हो गये।

घर में बेटा-बेटी-लुगाई छेदते। बाहर वह-यह आग के बोल फेंकते। रामधनी के मन में फफोले भर गये। करीम का दिमाग छलनी हो गया। नये भाई पूछें नहीं और पुराने भाई पास नहीं आने दें। खेती के काम पर हाथ लगाना हो तो कौन आये? अकेला गाव से कटकर कैसे जीये—कैसे बचे? इसी जाल में दोनों उलझे थे कि एक दिन आमना-सामना हो गया—कैसे हो करीम, नहीं-नहीं, कैलास!

—तुम बताओ रामधनी, नहीं-नहीं, रमजानी!

—बस, अपने किये को भुगत रहे हैं।

—हम भी।

—हम तो कल ही सहर जा रहे। उसने इधर-उधर देखा और धीरे से कहा—वहां से 'धरम-रखसा' वालों को यहा लाकर फिर शुद्धि करवा लेंगे। यूं मर-मर के तो अब जिया नहीं जाता।

—जी की कह दी तुमने। कल हम भी तबलीग वालों के यहां जाने की सोच रहे, फिर कलमा पढ़ लेंगे। अब अपन भी रह नहीं सकते।

—तो साथ ही क्यों न चलें सहर, एक ही बस से।

—साथ ही चलेंगे, कल ग्यारह बजे।

दोनों साथ-साथ शहर गये थे और धरम-मजहब वालों को साथ लेकर गांव आये थे।

उसी दिन एक शुद्धि करवाकर फिर रामधनी बन गया था और दूसरा कलमा पढ़कर फिर करीम हो गया था, पर उनके जंजाल कब कटे?

'एक बार जो मस्जिद की सीढियां चढ़कर कलमा पढ आया, खतना-सुन्नत करवा आया, वह भला फिर से हिंदू बन सकता है? लाख शुद्धि-बुद्धि करवा ले, अब क्या होता है!' रामधनी ने सुना।

'एक बार जो मूरत के आगे माथा टेक आया, तिलक लगाकर मंदिर की घंटी बजा आया, इतना ही नहीं, गाय का मूत पीकर जिसने सूअर खा लिया, वो भला फिर से मोमिन हो सकता है? यूं फिर कलमा रटा देने से क्या होता है!' करीम ने सुना।

उनका देनदार जो था। गिरधर साहू रामधनी के खेत-बैल पर कुर्की लाये, वह उनका कर्जदार जो था।

उधर धर्म-रक्षा समिति ने गति पकड़ी, इधर तबलीगी-मरकज हरकत में आया। धर्म-परिवर्तन की लहर जो इधर देश में हिलोरें मार रही थी, उसकी पहली परछाईं इस गांव में उभरी और *'करीम'* को *'कैलास'* तो *'रामधनी'* को *'रमजानी'* बना गांव के कटोरे में तूफान बरपा कर गयी। गिरधर साहू ने करीम को उबारने, उसके खेत-छप्पर बचाने के लिए हाथ बढ़ाया और मोल मांगा।

गुलाम सरवर रामधनी के आड़े-वखत दौड़े आये उसके खेत-बैल बचाने और कीमत मांगी।

—करीम, अपने मजहब में तो तुझे कोई पूछता नहीं, कलमे से तू काट दिया गया है। शुद्धि करवा ले, *'करीम'* से *'कैलास'* बन जा। सब रहेगा तेरे पास, अपना खेत-घर सब? गिरधर हुलसते हुए बोले।

—रामधनी, अपने धरम की आल-बाल से तू उखाड़ दिया गया, तेरे नाते-रिश्ते अब कहां? कलमा पढ़ ले भाई, कोई तुझसे कुछ नहीं ले सकेगा, खेत-बैल सब तेरे पास रहेंगे। गुलाम सरवर रामधनी के पास आये।

रामधनी और करीम के सामने कुछ भी साफ नहीं था। सब गड्डमड्ड हो गया। किससे रास्ता पूछें? गांव में अकेले जो ठहरे। फिर मामला धर्म-दीन का, ऐसा छुई-मुई कि अपनों के सामने मन उघाड़ें तो लताड़ खायें और दूसरों से मन की कहें तो डरें। दोनों एक ही तीर से बिंधे होकर भी अलग-अलग थे कि कुर्की की तारीख आ गयी। कुर्की टली, पर एक तरफ रामधनी को भाई रमजानी कहकर गुलाम रसूल ने गले लगाया और दूसरी तरफ करीम को भैया कैलास कहकर गिरधर साहू ने बांहों में भर लिया। इधर भी कैमरे की आंख चमकी और उधर भी। दूसरे दिन 'रमजानी' और 'कैलास' के फोटो अखबारों में थे।

करीम नाम खोकर उसने कैलास नाम धरा था। रामधनी से वह रमजानी बना था; फिर भी वह कैलास नाम न पा सका और रमजानी नाम उसकी

पहचान नहीं बना सका। छोटे से गांव की जानी-पहचानी गैल पर वे अन-जाने हो गये।

घर में बेटा-बेटी-लुगाई छेदते। बाहर वह-यह आग के बोल फेंकते। रामधनी के मन में फफोले भर गये। करीम का दिमाग छलनी हो गया। नये भाई पूछें नहीं और पुराने भाई पास नहीं आने दें। खेती के काम पर हाथ लगाना हो तो कौन आये? अकेला गांव से कटकर कैसे जीये—कैसे बचे? इसी जाल में दोनों उलझे थे कि एक दिन आमना-सामना हो गया—कैसे हो करीम, नहीं-नहीं, कैलास!

—तुम बताओ रामधनी, नहीं-नहीं, रमजानी!

—बस, अपने किये को भुगत रहे हैं।

—हम भी।

—हम तो कल ही सहर जा रहे। उसने इधर-उधर देखा और धीरे से कहा—वहां से 'धरम-रक्सा' वालों को यहां लाकर फिर शुद्धि करवा लेंगे। यूं मर-मर के तो अब जिया नहीं जाता।

—जी की कह दी तुमने। कल हम भी तबलीग वालों के यहां जाने की सोच रहे, फिर कलमा पढ़ लेंगे। अब अपन भी रह नहीं सकते।

—तो साथ ही क्यों न चलें सहर, एक ही बस से।

—साथ ही चलेंगे, कल ग्यारह बजे।

दोनों साथ-साथ शहर गये थे और धरम-मजहब वालों को साथ लेकर गांव आये थे।

उसी दिन एक शुद्धि करवाकर फिर रामधनी बन गया था और दूसरा कलमा पढ़कर फिर करीम हो गया था, पर उनके जंजाल कब कटे?

'एक बार जो मस्जिद की सीढियां चढ़कर कलमा पढ़ आया, खतना-सुन्नत करवा आया, वह भला फिर से हिंदू बन सकता है? लाख शुद्धि-वुद्धि करवा ले, अब क्या होता है!' रामधनी ने सुना।

'एक बार जो मूरत के आगे माथा टेक आया, तिलक लगाकर मंदिर की घंटी बजा आया, इतना ही नहीं, गाय का मूत पीकर जिसने सूअर खा लिया, वो भला फिर से मोमिन हो सकता है? यू फिर कलमा रटा देने से क्या होता है!' करीम ने सुना।

रामधनी सन्नाटे मे आ गया और करीम अंधड़ में। अब रामधनी होकर भी एक रमजानी था और दूसरा करीम होकर भी कैलास। पहले जो रमजानी बनकर भी रामधनी का रामधनी रहा, अब वह रामधनी बनकर भी लोगो की आंख मे रमजानी था। उधर जो पहले कैलास बनकर भी लोगों की नजरों मे करीम का करीम रहा, अब वह करीम बनकर भी करीम न हो सका, लोगो ने उसे कैलास ही माना। रामधनी की गाठ से राम भी गया और रहीम भी। करीम के हक से मंदिर भी गया और मस्जिद भी। शुद्धि करवाकर भी रामधनी मंदिर में रमजानी था और फिर से कलमा पढकर भी करीम मस्जिद में कैलास। उसे मंदिर नही अपना सका और इसे मस्जिद नही सहन कर पायी।

उनके लिए गाव अब फिर रेगिस्तान था। इसलिए अब वे गाव छोड़कर जा रहे थे। शहर, बहुत बडे शहर···

रामधनी और करीम अपने पूरे परिवार के साथ एक बस पर सवार थे।

—जा तो रहे है बंबई जैसे बड़े सहर में, पर वहां मेरा अपना कोई नही।

—वहां मेरा भी कौन बैठा है भाई ?

—क्यो, रामधनी लाला नही हैं साथ ! करीम की घरवाली ने हौसला बंधाते हुए कहा।

—अकेले क्यो, करीम काका साथ नही हमारे ? रामधनी की ब्याहता ने कहा।

—क्यो नहीं, क्यों नही। रामधनी ने करीम को सीट पर बैठे-बैठे ही बांह में भर लिया और करीम ने रामधनी के कंधे पर सिर रख दिया।

बस गांव छोड चुकी थी और उडती हुई धूल के धुंधलके मे गांव के मंदिर और मस्जिद पीछे छूट गये थे।

रोशनी का रथ : अंधेरे के पहिये

हम गये थे 'रोशनी का रथ' लेकर बित्ता भर पर्वत-डूगरियों की गोद मे फैले उस आदिवासी वासे मे जहां आज भी रेल नही पहुंची। बसअड्डा भी जहा मे कोई पन्द्रह किलोमीटर पीछे छूट गया है, पुलिस चौकी भी वहा से दूर पड़ती है और थाना-तहसील तो और भी दूर। जहा जाने के लिए कभी-कभार ही बस मिल पाती है। जाना ही है तो पैदल जायें या और कोई सवारी तलाश करें, सो उनका मिलना भी दूभर !

तलहटी-तराई मे जो समतल जमीन है। उसे तो तहसील-गढ़ी के बनियों-बामनों, ठाकुर-सरदारो ने पट्टे करवा लिया है। दूर-दूर पर छित-रायी पालियों-बस्तियों के भील-भीलनियों को आये दिन जोत-जातकर उस पर फसल पका लेते है और उन्ही के पीठ-बाचर पर लादकर उमे घरों-खलिहानो में बद कर देते हैं। बदले में उन्हें दो-हाथ का लूगडा और घुटनों छूता घघरा या फिर लगोटीनुमा धोती, एक मोटा अंगरखा या फंटे देकर हिसाब चुकता कर देते हैं। ऊपर से दो-एक टोकरा सूखा भुट्टा जो दे दिया तो समझ लो अगली जुताई तक के लिए भी वे गिरवी हो गये। पराई मजूरी मे खपने-खटने के बाद जो समय-सांस बचती है, उसे डूगरियों के ढलान में यहां-वहां उभरी पत्थर-फंसली को तोडने के बाद, कुएं की दो-एक रस्सियो की लम्बाई और उतनी ही चौड़ाई की, जो जमीन, भेत, निकल आयी है, उस पर खरच कर देते हैं। नीचे समतल मे बहने वाली नदी के कछार-कगार में पसरी मिट्टी-कादो या फिर जंगली पेड़-पौधों के सड़े-गले पत्तो से पाटकर उन्होने उस भेत-भूमि को थोडा उपजाऊ बना लिया है। नीचे से आली-गीली मिट्टी को कांधे-कपाल चढाकर डूगरियो की खड़ी चढ़ान चढ जाने का हल्ला कितना पसीनासोख और रगत-मार करतब है ! जहां अपने डील को ही साधकर ऊपर तक ढो ले जाने की सोच से ही सास

फूलने लगती है; वही कट्टा-टोकरा भर माटी को काली सूखी मरी-मुरझाई टांगो पर सभालकर खड़ी चढान चढ़ते चले जाना कैसे तो बनता और सधता होगा ? 'रोशनी के रथ' पर चढकर चलने वाले लोगों के सोच के बाहर की ही बात है यह ।

इस भेत-खेती में पनपता भी क्या है ? मक्की-पीली मक्की के तीस कोड़ी भुट्टे । कभी कहीं सरसों फूल गयी तो वाह ! और जहा हरी मिर्च जाग गयी या फिर कोई 'फूट' पक गया तो क्या कहने ! फिर तो वे भी इसकी रखवाली मे इसके साथ-साथ जागेंगे, निहाल होकर गीत गायेंगे—ऐसे गीत जो आधे पेट खाकर ही गाये जा सकते हैं—आधा तन ढापे ही सुने जा सकते हैं । इन गीतो मे होती है देवताओ की अरदास, मेघो की मनुहार, नदियो की मोह-महिमा और डूंगर-पर्वत का आस-विसास ।

उजली सोम, ममताभरी माही और जोत-जागी जाखम के संगम पर, बरस में एक बार मेला जुड़ता है वेणेश्वर धाम मे—माघ पूनो को, और सात दिन तक चलता रहता है । माही-सोम के मिलन बिंदु पर उभरे वेणकू टापू पर बने मंदिर के चमचमाते कलश के ऊपर फहराती धजा भील आदिवासियो को दूर से ही आशीष देती हुई लगती है और वे गाते-बजाते रात भर चादनी मे चलते-चलते वेणेश्वर धाम—वेणेश्वर उ वेणुकु—पहुचते है । वेणेश्वर का यह मेला खडित शिवलिंग की अखड पूजा-उपासना से पगे आदिवासियो के मन-मानस मे त्रिवेणी सगम का जोग जगा देता है । जलधार में मृत जनों के फूल विसर्जित किये जाते हैं । वहीं तर्पण-मुंडन क्रियाएं भी होती हैं, और कुछ न बन सके तो सगम मे डुबकी लगाकर तो अपने पापों को हल्का कर ही लेते है । फिर झूमते-मल्हाते कृष्णावतार 'मावजी' के पाटवी महाराज को पालकी मे पधरा कर, सिर-माथे बिठाकर, उनकी असवारी-जुलूस निकालते हैं । 'मावजी' के चोपड़े में लिखे अपने भाग-लेख बंचवाकर कभी खिन्न तो कभी खिल जाते हैं । जब उनके भाग-लेख यू गड्-मड्ड हो जाते है कि समझने पर भी उनकी समझ मे कुछ नही आता तो, आगे वे अपने ठिये-ठिकाने के भोपो-स्यानो से मजूरी की मार से मरी हुई अपनी धुंधली हाथ-रेखाओं को पढ़वाते हैं और हारी-बीमारी के लिए संजोये गये मुट्ठी भर गुड़-धान को उनके अगोछे के छोर में बांध देते हैं ।

मेले के सात दिनों में ही आदिवासी जैसे साल भर का जीवन जी लेते हैं। आसपास के तहसील-जिलों से आये मोटे-मानुस-जनों को हुमकते-हुलसते अच्छा खाते-पीते और बेखटक जागते-जीते देखकर ही उनकी जीवन से खरी और भली पहचान होती है और फिर मेले के उठने के साथ ही यह पाहुन-पहचान लोप हो जाती है फिर अगले मेले में फिर उसकी 'तपास' होती है, मिलती भी है पर पराई होकर, दूर-दूर से; जीवन से उनकी पास की पहचान तो जैसे कभी बन ही नहीं पाती। पालों-टापारों में तो जिनगानी बैरन बनकर ही उन्हें सालती-सताती रहती है।

दूसरा दिन है—मंदिर के रेतीले आंचल में ही मेले की गहमा-गहमी और चहचहा घनी-धामड है। उसी के आसपास हाट-बाजार लगता है। साल भर पहले देखी गयी चीज-बसत अब फिर सामने है—बर्तन कपडे की दुकानें, मिठाई-नमकीन के थट्ट, पर भरमार उन लोगों की है जो दरी-टाट पर बुंदे-बाले, हंसले-हाले, नग-मोती, हार-माला, कांच के कडे, चूडियां छल्ले-छीपें, जिलट के कगन-कातरिये—झांझरिये फैलाये बैठे, कुआरियो-सुहागिनो को ललचा-लुभा रहे हैं। चमचम सितारो की लाल-हरी बिंदिया, रंग-बिरंगे रेशमी फूदे-लूमें, फीते-लच्छे, गोटा-किनारी, हुक-बटन, केस-भेख, नख-रंग, काजल-लाली, आंख-बराबर आरसी, मोर-भात के कघे-कंगसी और प्लास्टिक का क्या कुछ नहीं—पूरा संसार सामने बिखरा है। क्या तो लें और क्या रहने दें ? जी करता है, सभी आंचल में बांध लें, नहीं तो एक-एक नमूना ही सही। मन-भाता सीस ओपता है, पर खीसे के छेद और भाग के भेद के आगे बस जो नहीं। कुछ अनूठी सिंगार-सोहती चीज-बसत को 'बयरा-लुगाइयों' ने तो हुमककर सर-माथे धार आरसी मे झांक ही तो लिया। लजा-लुकाकर मोल-भाव जो पूछा, फिर अपने लोग-लगवाल की आंखों में उतरी बेबसी को लखकर माथे चढ़ा टीका और कलाई बंधा कंगना उतार-धरकर झट खड़ी हो गयी। उनके आगे फिर मेला था अपने जोर जुगत मे समाये, वह मेला—फिर गीत थे—गरबे-घूमर और वे थे।

हम भी आये हैं इस मेले मे, ड्यूटी पर; 'रोशनी का रथ' लेकर ! जी

हां, 'रोशनी का रथ', कैसा काव्यात्मक नाम दिया है हमारे भूतपूर्व कवि एवं वर्तमान उपसंचालक जन-संपर्क विभाग ने ! इस रथ में बैटरी की रोशनी है और इंजन का घोडा जो पेट्रोल पीकर पहियों के पैरों से दौड़ता है। समझें, एक अच्छी-खासी बस को चलता-फिरता प्रदर्शनीघर बनाकर उसके भीतर लटका दिये हैं—चार्ट, चित्र, आजादी के बाद बन आयी प्रगति के आंकडे। कितना कुछ किया है हमारी सरकार ने। गांवों में बिजली, स्कूल, स्वास्थ्य-परिवार नियोजन केन्द्र, खेतों मे पानी-पम्प, खाद, बीज, कीडा-मार दवाइया क्या कुछ नही ? चौकी-थाने, तहसील-जेल सभी तो—यही दर्शाया गया है 'रोशनी के रथ' मे, जिसे गांव वाले-आदिवासी देखें-समझें और गुनें कि कितना कुछ हो गया है उनके लिए और आगे क्या कुछ नही होने वाला उनके लिए। उन्हें प्रोजेक्टर से फिल्में दिखाकर सीख भी दी जाती कि वे कैसे तो अपना कारोबार-खेतीधंधा करें और अगले चुनाव मे कैसे वोट दें।

झुटपटा होने से पहले ही साझ कजरा गयी। अंधेरा परछाइयां फैलाये कि तभी 'गयाम-बत्ती', पेट्रोमैक्स, की शूं-शूं में झींगुरों की झनझन डूब गयी और ठौर-ठौर पर जगर-जगर के चदोवे बन गये। तो उधर, यहा-वहां पांच-पांच, दस-दस आदिवासी लोग-लुगाई डीगरा-डीगरी के घेरों के बीच सुलगते माणो-उपलों से धुआ उठने लगा। उठी-उभरी चट्टानों की ओट मे बैठी लुगाइया आंचल फैलाकर, उसमें पीली मक्की का आटा सानने लगी—फिर हथेली जैसे दो पत्तो के बीच गुंथे आटे को फैलाकर कजराये उपलों की आग पर सेका जाने लगा। दो मुट्ठी दाल को काली मिट्टी की हंडिया मे डालकर उसे गले तक पानी से भर दिया। ऊपर से खड़ी लाल मिर्च छोडकर उसे पत्थर के चूल्हे पर चढा दिया फिर उसके बीच जगली फूस ठूसकर चिनगारी फूक दी गयी और जब पानिये सिक गये—दाल सीझ गयी तो पत्तो के दोनो मे सबको परस दी गयी। उनके लिए पत्तों की ओट में सिके पानिये और धुआं-धुआं पनियाई दाल मेले का-मनुहार-मानभरा ऊंचा भोग है। उनसे दूजा उनके लिए बन भी क्या सकता है ! सादे दिनों मे तो साभली, कोदर, कुरी-कागनी को कूट-पीस-सेंककर ही निगलना पड़ता है—फिर 'माल' तो उनके लिए माल ही है—मरसू, तरमिए की कोढ़े की

भाजी जो कही मिल गयी तो छोरे-छोकरे तो टूट ही पड़ते उस पर। मीठे के नाम पर उनके पास मुट्ठी भर नमक होता और वे नमक को मीठू ही कहते हैं।

इस मेले की एक रिपोर्ट हमे जन-संपर्क मुख्यालय के लिए तैयार करनी थी। अपनी ग्राम-विकास योजना की प्रगति का जायजा सरकार चाहती थी। और यह सब करने के लिए सौरभ बाबू जैसे समझू और पके हुए सहायक जन-संपर्क अधिकारी के साथ मुझ जैसे अनपढ़ उत्साही कलम-घिस्सू क्लर्क को भी उनसे नत्थी करके भेज दिया था उधर इस मेले मे।

मेले के इस छोर से उस छोर को नापते हुए हम काम की टोह में जमीन-जन को सूंघते हुए, मंदिर से कुछ दूर धरती के एक गूमड़ पर बैठे एक अधेड़ और एक बूढे आदिवासी से जा टकराये। टूटी-फूटी बागड़ी, उनकी बोली, मे जै-जै गुर—राम-राम कहकर अभिवादन किया। मैंने बीड़ी का बंडल निकाला, हथेलियो के बीच रखकर उसे बल दिया और फिर एक-एक बीड़ी उन दोनों को थमाकर एक बीड़ी अपने होंठों मे दबायी। लाइटर की गिर्री घुमाकर लौ जलायी और अपनी बीड़ी सुलगा कर लाइटर बूढे को थमा दिया। जब बेगानापन थोड़ा छितराया तो खेती-खाद, महगाई-मोल की बात चलाकर हम अपने मुद्दे पर आ गये।

—तुमने कभी रेल देखी है? सौरभ बाबू ने उस बूढे आदमी को पूछा।

—हां जोई देखी है, रूपू नी रेल।

—क्या चादी की रेल! देखी है?

—हा-हां, चांदी की रेल देखी। तब जब रेल की सरकार के बडे मत्री बाबू जिले की कोठी में आये थे। अधेड़ आदिवासी ने हामी भरी। रेल की सरकार? बडे मत्री बाबू! अचरज से मेरी आंखों मे देखकर सौरभ बाबू ने कहा—तब रेलमंत्री बाबू जगजीवनराम थे न! उनके लिए कह रहा है। उन्होंने इस इलाके का दौरा किया था।

—हां, तभी उन्हे चांदी की छोटी-सी रेल भेंट की थी, नेता भाई ने और अरदास की थी महाराज, एक रेलगाड़ी इधर भी लाओ—गाड़ी मोटर

मे भर-भरकर आदिवासियो को भी ले गये थे। हमे भी। पर रेल इधर नहीं आयी। उसने हमारी बात को समझकर टेक दी। हमने लोहे की रेल पर दौडती रेल कभी नही देखी।

—लो सुनो, माथुर, चांदी की रेल देख ली पर लोहे की रेल नही देखी। सौरभ बाबू बोले—इसे कहते है प्रगति-विकास, टाक लो बाबू अपने रिपोर्ताज मे इसे।

अब हम यहां से हटे। आगे बढ़े। कुछ दूर, जलते हुए पेट्रोमैक्स का उजाला जहा ठहरकर छितरा गया था, वही चार गबरू जवान-मोटियार जुडे थे और उनसे थोडा परे एक गोरी-गदरायी आदिवासी युवती बैठी थी। हम लोग सिगरेट के कश भरते हुए उनसे इतने परे होकर खड़े हो गये कि उनकी बातचीत सुन सकें।

—लई ले···लइ ले···लाज···लुकाई के कै जावैला। गले में हल्का रेशमी रूमाल लपेटे, तेल में चक बालो मे कंघा खोसे, आखों मे खूब छितराया छाया काजल डाले, नखो पर नख-पॉलिश लगाये, पजों पर बैठा वह जबरा जवान अपनी उस नखराली-चहेती की मान-मनुहार मे मूंगफली के दाने बढ़ाता हुआ कह रहा था; जिसे उसने इसी मेले मे अपने से साधा-बांधा था। उधर वह थी कि अपने दोनो हाथों की चुटकियों मे घूघट के छोर थामे सामने कांच की पेटी मे बंद बुदे-बालो, हार-कगनों को ललचायी आंखों से देखे चली जा रही थी। दूसरे सगी-गोठिये पास बैठे बीड़ी धोक रहे थे।

—लई···ले···लइ ले···अमार घेरे नातरे वईजे ते एवेज मौज-मजा करीए इतना कहकर उसने उसके घूघट के छोर मे उलझी उगलियों पर मूगफली के दाने टिका दिये।

मैंने सुना और सौरभ बाबू की ओर देखते हुए आंखें चौड़ा दीं तो उन्होने समझाया, कह रहा है—मेरे घर मे बैठ जायेगी—नाता जोड़ लेगी तो मेरे साथ यूं ही हमेशा मौज-मजे करेगी। मूंगफली के चार दानो में समायी मौज-मस्ती की राह पर मेरे पैर थर्रा गये। आगे साथ-साथ जीने-रहने के लिए कितना और कैसा-कैसा निश्छल विश्वास दे रहा था वह उसे! और सौरभ बाबू जैसे कही भीतर से हिल गये थे। अब हम वहां और खड़े नही रह सके। वहा से हट गये चुपचाप—उदास-उदास।

अब हम फिर दो आदिवासियों के सामने थे—उनमें से एक साठ-पार का गल्लो—डोकरा था और दूसरा तीस-पैंतीस का मोटियार। मैंने फिर अपनी जेब से बीड़ी का बंडल उनके सामने बढ़ाया और उनके पास बैठ गया। सौरभ बाबू ने अपनी उखड़ी-लंगड़ी वागड़ी बोलकर उनसे अपनापा बना लिया और पूछा—ये बताओ काका, राजा-ठाकुरों का 'टैम' अच्छा था या आज के अपने मनिस्टर-टोपीवालों का ?

—हमारे लिए तो हर टैम मजूरी-मेनत का टैम होये—पहले उनकी टहल' करते थे अब 'इनकी' चाकरी पर चढ़े हैं।

—फिर भी कुछ फरक-आंतरा होगा ना ?

—फरक-फेर ! जे ननकू से पूछो ! बूढ़े ने अपने संगी की तरफ देखते हुए बीड़ी का सुट्टा मारा।

—नहीं काका, पहले तुम बताओ—तुमने बहुत ऊंच-नीच झेला है। सौरभ बाबू ने अपनी बात पर जोर दिया।

—भाई, धरम की पूछो तो—ठाकुर-ठीकानों में दया-मया तो बसती ही थी।

वह कहने लगा—मोटियार, मस्ती चढ़े दिन थे तब मेरे घरवाली की गोद गदरायी थी कि उसमें रोग रम गया। भोपों-वैद से न सधा तो दवा-दारू लेने ठाकुर के गांव-गढ़ी गये। आग उड़ेलते, कपाल दाझते दिन की झाल भरी दोपहर ढल चुकी थी—सूरज की दाह से चुप खड़े पेड़ों के पत्तों की ओट ले ठंडी सांस ली थी कि तभी मेरा गढ़ी के कोट के भीतर से निकलना हुआ। छाती की धुकधुकी रोककर आंख उठायी तो देखा, सामने ठाकुर महाराज नीम की घनी छाया में पलंग पर पधराये आंख-पलक झांपे इधर-उधर करवट बदल रहे हैं। पास खड़ा चाकर खस का बीजणा-पंखा डुला रहा है। उसने मुझे देखा और मैंने उसे। वह ऐंठ-अकड़ में और मैं धरम संकट में कि जुहार-जैकार करूं कि दुम दबाये, हौले पग धर, टल जाऊं, कहीं 'मालक' नींद बस हों और मेरे जैकार से नींद का तार टूट जाये तो ? और 'मालक' वैसे ही अधमुंदी आंख-पलक यूं ही मल्लाह रहे हों और मैं बिना टहार-जुहार करे निकल गया तो ? ठाकुर न भी देखें तो यह चाकर ही मेरे जुहार-जैकार की बात उनसे चताकर मुझ पर 'कोप' करवा दे तो ?

मैं उलझन-उधेड़बुन मे था कि हुजूर ने मेरी तरफ करवट फेरी कि मेरे पैर नीम की तरफ बढ गये और शीश झुक गया और 'जै-जै अन्नदाता—जै-जै माराज-मालक' के ऊंचे बोल मेरे मुह से उबल पडे। ठाकुर-मालकजी ने पलके उघाडी, मुझे पुतलियो में भरकर घूरा और लाल आंखों के लाल धागे तरेरकर उठ बैठे। हुक्म दिया—नाथिया, मेल इण रे माथे पचास जरिया-नेम आंख लगी कि आइ मरो 'राकस'। मैंने सुना और उनके चरणो के पास माथ नवाकर बैठ गया। दनादन जूते सिर पर पडते रहे—एक-दो-तीन—बीस। मेरा सिर चक्कर-घिन्नी हो गया कि कान के सन्नाटे मे बोल आये—बस'''धकियाकर निकाल बाहर कर कोट से इसे।

—मैं खोपडी मे जूते-जरबों की खडखड़ी-घूमड-घूमडी और हाथ मे दवा-दारू की पुडिया-शीशी लेकर पाल पहुचा और बापा को अपनी विपदा सुनायी। उन्होने सुनी और हुलसकर बोले—जुग-जुग जीवो अमारा ठाकुर बावसी हमेस राज करे—दियालु पचास नी ठोर बीश जरबा मेल ने सोती करी आली। बूढे ने बताया और लम्बी सांस लेकर मेरी तरफ देखा। मैं मुह बाधे बेहिल बैठा था कि सौरभ बाबू बोले—पचास जूते लगाने का हुक्म दिया और बीस जूते लगवाकर ही छोड दिया तो, अपने बापा की तरह तुम भी मानते हो काका, कि ठाकुर दयालु थे?

—तब तो नही मानता था पर अब मानना पडता है।

—वो भला क्यो? अब ननकू बोला।

—तेरे सामने की बात है, तू ही भूल गया। पिछली बरखा को नही गया था मेरे सग, थाने-अरजी लेकर कि वो ठेकेदार का मुनीम हमारी *बहन-बेटी की लाज-लूगड़ मे हाथ डाले है।*

बूढे ने याद दिलाया तो ननकू बोला—हां-हां, याद आया काका—थानेदार 'खाट्यो-भांगडू' के नशे में था। बोला शिकायत ही लाया है—शहद की बोतल नही और जब हाथ जोड़कर हमने कहा—'भूली गयो बावसी' तो उसने पलटकर मेरे पेट मे वह लात लगायी कि मैं जमीन सूघने लगा। मार की याद हरी हुई और ननकू का कंठ सूख गया।

—आगे क्या हुआ ननकू भाई? मैंने उठंग होकर पूछा तो काका बोले —मैं बताता हूं सुनो—थानेदार ने सिपाही को बुलाकर हमारे सिर पर

बीस-बीस जूते लगाने का हुक्म दिया और हमारी अरजी फाड़कर मुड़ गया।

—तो फिर ?

—फिर क्या, गिन-गिनकर पूरे बीस जूते मेरे और बीस ननकू के सिपाही ने लगाये, हम बिलबिलाते रहे। पर थानेदार टस से मस नहीं हुआ। बूढ़े ने पनियाई आंखों की कोरों को छुआ और ठहरकर बोला—लिखे-पढ़े बाबू तुम्ही बताओ, पैले का टैम अच्छा था या आज का—इधर का ? हमने सुना—मुझे ऐसा लगा जैसे यह बूढ़ा 'रोशनी के रथ' पर, हमारे सिर पर, दनादन जूते बरसा रहा है।

बेढब ढंग है, मन-माथे में उभर आये भारीपन को हल्का करने के लिए मैंने कहा—भाई ननकू, तेरी फोटू ले लूं। वह राजी हो गया पर बूढ़ा नहीं माना। कैमरे की आंख के सामने आने के लिए राजी ही नहीं हुआ। मैंने कैमरे के आगे ननकू को खड़ा कर मुस्कराने को कहा तो उसने अपने होठ यूं फैला दिये जैसे अभी उसके सिर पर जूते पड़े हों और वह झेंप मिटाने के लिए होंठों पर मुस्कान जैसा भाव लाने में जुटा हो। क्लिक के साथ फ्लैश चमकी और ननकू फिल्म में आ गया। तभी मैंने कैमरे को बूढ़े की तरफ साधा। वह माथा झुकाये, घुटने पेट से अडाये बैठा था। मैंने लेंस से आंख लगायी तो मुझे एक पल ऐसा लगा जैसे पुराना जूता सामने पड़ा है—पर दूसरे ही पल बूढ़े का ढांचा लेंस में उभरा और मैंने उसे शूट कर अचभे में डाल दिया।

अब हम अपने डेरे की तरफ चल पड़े। जाड़ा था कि ठंडी-दहक। ओवरकोट और मफलर में ढपी-छिपी हमारी पसलियां-हड्डियां गलने लगीं। हमने 'रोशनी के रथ' में बिस्तर फैलाकर लिहाफ-कंबल ताने, तब तक मेले का संसार भी अंधेरे का लबादा ओढ़े झींगुरों की झनकार में डूब चुका था।

मंदिर में झालर-घंटे गूंजे कि सौरभ बाबू का ब्राह्मण-पंडित जाग गया। मेरा कायस्थ मन, अपनी काया को बाहर के हिमानी कोहरे के कहर से

बचाये 'रोशनी के रथ' के अंधेरे में ही सहेज रखना चाह रहा था कि वह 'शिव-शिव' उचारते हुए बोले—उठो भाई, इस पर्वत-वन की भोर-किरण के साथ नहीं जागे तो, समझो सोते ही रहे जनम भर ।

—निमोनिया नहीं, डबल निमोनिया करवाओगे सौरभ बाबू, बाल-गोपाल छोटे हैं और बीमा भी खास नहीं । मैंने मफलर कानों पर लपेटा, कंबल संभाला ।

—नित सवेरे नहाने का मेरा बरसों का नेम भी आज टूट गया—मंजन-कुल्ला करके ही रह गया हूं—मैं शेव करता हूं । बला की सर्दी है। तुम भी अब तैयार हो जाओ । सौरभ बाबू ने कहा और अपना झोला संभालने लगे ।

—आप क्या कह रहे हैं बाबू—कुछ समझ-सुनाई नहीं पड़ता है, आपकी बातें कुहरे में कहीं जमकर रह गयीं । मैंने कहा और कंबल में फिर घुस गया ।

—अरे यार, हम कंबल-लिहाफ में लिपटे ठिठुरते रहें-इस बंद बस-गाड़ी में। चल उठ तो, सामने वाली डूगरियों पर बने खोलड़ी-टापर के वासियों की भी जरा टोह ले आयें। इतना कहकर इस बार तो उन्होंने मुझे बाहर ही धकेल दिया ।

बिना नहाये-धोये ही हमने चाय-नाश्ता लिया और 'रोशनी के रथ' से उतर पड़े । आसमान में सूरज का रथ ऊपर चढ़ आया था। मंदिर के कलश पर जमा कोहरा झरने लगा, भीगी ध्वजा कांपने लगी और इधर-उधर रूपे रूख-झांकड ठंड में कुनमुनाने लगे । चिड़ियों की सरदाई चूं-चहक चमकने लगी । खादी ऊन के कोट की जेब में रखी डायरी पर पड़ा मेरा ठिठराया हाथ गरमास की तलाश में कुलमुला रहा था और उधर सौरभ बाबू की काया पर चढ़े ओवरकोट पर कैमरा झूल रहा था ।

कुछ दूर सामने खडी डूगरी के कपाल पर एक लाल ध्वजा धूज रही थी । कोई छोटा-मोटा देवल ही होगा ऊपर, सौरभ बाबू उधर ही बढ़ चले । वह आगे और मैं पीछे । पर्वतिया चढ़ान को झुक-संभलकर हम चढने लगे । अभी थोड़ी ही दूरी नापी थी कि देखा, डूगरी के उभरे गुमड़ पर एक आदिवासी डाटक जवान हाथ भर धोती की लाग खसोले अपने खुले-चौड़े सीने

पर जाड़े को झेलता हुआ उकड़ू बैठा गन्ना चूस रहा है। उसने हमें सामने देखकर आंखें चौड़ायीं तो उसमें घने-बिखरे लाल डोरों ने हमारी दीठ को बांध-बेध दिया। उसकी आंखों में रात की चढ़ायी कच्ची दारू का अधबुझा उजास अब भी लहराता लग रहा था।

—जै-जै धूलेसर बाबा नी, बेणेसर देवनी ! सौरभ बाबू ने उससे रामा-सामी की। उसने 'राम-राम बावसी' कहकर हमारा 'जयकार' झेला। अब धुंधलाई धूप में उसका तांबा-रंग चेहरा खिल उठा था—वह बहुत हुलास भरा लग रहा था।

—क्यों भाई, कैसे हो ? मैंने उसके पास जाकर पूछा।

—पूसोस नी बावसी, अमार तो ताजू खावू, ताजू पेर वू न ताजू स रेवू, मगन-मौज स है। वह मस्ती में बोला और गन्ने का एक गस्सा मुंह में भर लिया।

—यह छापक-टापर तुम्हारा है ? अगला सवाल था मेरा।

वह गन्ने का रस गटककर बोला—मारोस है। वह फिर गन्ना चूसने लगा।

—समझे माथुर, कह रहा है, पूछो मत बाबूजी, सब मौज-मस्ती है, अपने तो बस खूब अच्छा खाना-पहनना और ठाठ से रहना। टापर मेरा अपना ही है और सब मौज-मस्ती है। सौरभ बाबू ने उसकी थाह मुझे दी।

—चलो माथुर, आजाद हिंदुस्तान में इससे ज्यादा खुशहाल आदमी हमें शायद ही कहीं मिले। मैंने सुना सौरभ कह रहे थे।

—इसकी तसवीर नहीं लेंगे ?

—कैमरे की आंख में इसकी देह-दीनता ही समा सकेगी। फटी-लीर धोती की लांग में बसे, घूंट भर गन्ने के रस में डूबे फूस के घर के सामने बैठे उस आदमी के हास-हुलास की तसवीर तो हम नहीं ले सकेंगे माथुर। सौरभ बाबू ने कहा और आगे बढ़ गये।

अब हम डूगरों के शिखर पर थे और सामने था एक छोटा-सा मंदिर। सूरज-किरण का ओज-उजास अब खूब ओर-छोर फैल गया था। हम ललाट पर हथेली की ओट कर नीचे लगे मेले के विस्तार-विलास को ऊपर से देख ही रहे थे। कोहरे की ठंडी चादर पर किरनों की हल्की गोट बड़ी मन-

भावन थी। आगे-पीछे निगाह डालकर शीतल सागर मे नन्हें-नन्हें टापुओं-सी डूगरियों-मगरों को निरखते मदिर के पीछे बढ गये थे कि तभी ढलान में बने छप्पर से एक भील और भीलनी नमूदार हुए।

—तमारे हूं जुवै भाई ! हमें सामने देखकर भीलनी ने अपनी बांह पर बैठे मच्छर को धवकते हुए पूछा। बीस-बाईस बरस की ही उमर रही होगी उसकी। खूब कसी हुई काठी और कट्ठा बदन। उसने ओछी घघरिया के अगले घेर की लाग मारकर पीछे कमर मे खोंस रखा था और ऊपर एक चोलीनुमा कब्जा भर पहन रखा था, जिसके टांके यहां-वहां से उधड चुके थे और वह इधर-उधर से खिंच-तनकर मसक गया था।

—मेले मे आये थे—सोचा मदिर है, पहाड़ी पर दर्शन भी कर लें। मैंने कहा।

—तत् थई ग्यां दरसन ? भील ने मेरी जमी हुई निगाह को धकेलते हुए कहा। उसके बोल मे टूटन और कसैलापन था।

—हां-हां हो गये। मैं संभला और गिलगिले नरम बोल मे उससे पूछा—तुम लोग नीचे नही गये मेले मे ?

—मैं गया था। अकेले।

—क्या लाये मेले से ?

—क्या लाता ? कैसे लाता ! पर ये मणि कहा मानती है। बोली, कुछ नही तो मेले की रंगत ही देख आओ—रखवाली पर मैं जो हूं—और उसने दस पैसे थमाकर नीचे भेज दिया था कल मुझे। उसने बताया अब तक मणि छप्पर के भीतर जा चुकी थी।

—दस पैसे बस !

—बीड़ी-तंबाकू के लिए—और थे कहां ! मेले मे सब सुख-शौक बिक रहे थे—मैं क्या खरीदता···! मैंने एक मूली ले ली। और झुझल में उसके पत्ते नोचकर फेंक दिये। तभी दो नंग-धड़ंग छोकरे उस पर टूट पड़े और छीन-झपटकर बकर-बकर चबाते हुए उछलने लगे।

—मैंने मणि को यह बात बतायी थी कल ही—तभी से यह गुमसुम है। कुरी-कोदर, खाने का कुछ नही होने पर भी यह एकदम चुप है, अभी मुह खोला है उसने। मैंने सुना और मेरे भीतर कोई ठंडी कील ठुककर रह

गयी। सौरभ बाबू के माथे पर उभरी लकीरें और भी गहरी होकर सिकुड़ गयी थीं। मणि फिर से लौट आयी थी, सामने खड़ी थी, वैसी ही कातर, क्लेश डूबी। राख-राख हुआ चेहरा लिए। 'एक फोटो ले लूं मैं तुम्हारा ?' चुप्पी के कोहरे को चीरते हुए सौरभ बाबू ने पूछा और कैमरे की आंख भीलनी की तरफ जमाने लगे।

—ना-ना बावसी। कहकर वह कैमरे के आगे से हट गयी और छप्पर की ओट हो गयी। कुछ ही पलों में फिर लौटी तो उसकी बांहों में टाट ओढ़े एक बीमार-सा बच्चा था। यही कोई साल भर का। 'चाहो तो मेरा और मेरे बच्चे का फोटो ले लो—पर एक फोटो मुझे भी दे कर जाना', उसने कहा और बच्चे का सूखा चेहरा अपने गाल से सटाकर सामने खड़ी हो गयी। सौरभ बाबू ने कैमरा ठीक किया, तभी उसने फिर पूछा—एक फोटो मुझे देकर जाओगे—धरम से !

—धरम से ! सौरभ बाबू ने कहा। उसे तसल्ली हुई और वह बच्चे के गुजलाये बालों में अंटे तिनके-पत्ते बीनती हुई बोली—इसे खूब गदराई घास-पत्तों पर सुलाया, ऊपर से टाट भी ओढ़ाया—पर यह सरदी खा ही गया। अब कभी-कभार ही आंख खोलता है। इसे कहीं कुछ हो गया तो—इसका फोटो तो मेरे पास रहेगा। वह होंठों में बुदबुदायी और आंख खोलने के लिए उसे हलराने-दुलराने लगी—*हां, हाड़ फोड़ जाड़ा है।* कैसे रहते हो तुम यहां ? मैंने पूछ लिया।

उसने खिसक आये टाट को बच्चे पर सहेजते हुए कहा—*अमे त तोए ठीकस हं—पण अंण बीजं गरीब मनक नं हुं थाहे ?* वह फोटो के लिए तैयार होती हुई कह रही थी। मैं उसकी बोली, वागड़ी, न समझकर भी समझ गया था—दुख-दर्द की बोली एक जो होती है—हम तो फिर भी ठीक हैं, पर गरीब लोगों का क्या होगा ? वह कह रही थी। मुझे ऐसा लगा जैसे 'रोशनी के रथ' को किसी ने पहाड़ी से नीचे धकेल दिया है। और अंधेरे के पहिए हमें रौंदते-कुचलते चले जा रहे हैं।

वांधो ना नाव इक ठांव

उसने कालवेल की तरफ हाथ बढाया ही था कि कमरे का दरवाजा खुला। वैरा बाहर निकला और उसकी आखों मे कुछ पढकर बोला—भीतर हैं, आप वैठिये—उसने चौखट पर खडे-खडे ही सब सुना और वैरे के टलने पर भीतर दाखिल हो गया। डाक बगले के कमरे की ऊंची दीवारों पर टगी बड़ी-बड़ी तस्वीरो को आखों में समेटकर वह विनय-विनती भरे शब्दों को चुगला ही रहा था कि कमरे का भीतरी दरवाजा खुला और पहली देख मे ही शालीन और सजीदा लगने वाली एक युवती, हलके गुलाबी रंग की साड़ी मे पूरी सादगी लिए, नमूदार हुई। उसे देखते ही उसके हाथ अभिवादन की मुद्रा मे जुड़ गये।

—जी···मैं···मुझे शुक्लाजी ने भेजा है···जी···मैं बहुत परेशान हूं ···आप भी मेरी कुछ मदद कीजिये···साहब से···

—साहब !

—जी-जी···आप भी किसी की बहन-बेटी हैं···उसने देखा सामने पच्चीस-सत्ताईस साल का एक युवक खड़ा है। चेहरे पर बेबसी, बेचारगी और बोल मे यहूदी याचना लिए पहले तो वह सकपकायी। कुछ समझ ना सकी पर उसके आपे की टूटन और [illegible] मे उगी निरीहता को लखकर सौजन्यवश क [illegible] —हैं [illegible] क्यो हैं। उसने सुना और अपने में पैद [illegible]

का सिरा संभाला—

—आप किससे मिलने आये हैं ? उसने प्यालों में चाय डालने के बाद बिस्किट को तश्तरी उसकी तरफ बढ़ाते हुए पूछा।

—जी···जी, मैं चीफ इंजीनियर शर्मा साहब से···मैं बेकार हूं। मुझे काम चाहिए···अगर आप···वह उसके चेहरे पर उभरे अजानेपन को देखकर आगे कुछ ना कह सका।

—लीजिये, पहले चाय पीजिये···और हां ये भी लें बिस्किट। इतना कहकर उसने अपना कप उठाया और होले-होले सिप करने लगी। कमरे में एकबारगी सकपकायी-सी चुप्पी तैर गयी। उसने भी प्याला उठाया। चाय की भाप उसके नथुनों को छूने लगी।

चढ़ते सितम्बर की वह एक ठंडी सुबह थी। बड़ी खिड़की के शीशों के सामने पसरी झील की गोद में पानी अभी उनींदा ही था। किनारे से जरा दूर उठे टीले पर खड़े डाक-बंगले की इमारत का धुंधलाता अक्स सूरज के छुई-मुई से उजाले में लरज रहा था। नन्हा पवन-हिलोर गेंदे-गुलाब की गमक लिए जब तब खिड़की के परदों को सरसराकर कमरे में झांक जाता था। इस बार पवन झकोर काफी गदराया हुआ था। वह अपने पुराने स्वेटर में झुरझुरा गया।

—पीजिये ना; चाय आपके हाथ में ही ठंडी हो जायेगी···मैं शर्मा साहब को···आगे वह बोला।

—जी क्या बताऊं···ऐसी आन पड़ी है कि···छः महीने में पांच हजार रुपये का इन्तजाम नहीं हुआ तो वे रिश्ता तोड़ देंगे और मेरी बहन कहीं की नहीं रहेगी। पिताजी रहे नहीं। बहन, मां और मैं हूं।

—माइनिंग का डिप्लोमा है मेरे पास, पर बेकार ! वह जैसे जागा और टेप-रेकार्ड की तरह बजने लगा। बिस्किट कुतरते हुए जब-तब पलक उठा वह उसे देख लेती थी। वही कातरता, भावनामयी निरीहता, असहाय विकलता और चेहरे पर चमचमाता तनाव वैसा ही; ठीक बड़े भैया का-सा। भैया को ऐसे ही तपते तनाव में जकड़ा हुआ उसने देखा था—महीनों। और यह जकड़न-कसकन तभी ढीली हो पायी थी जब दीदी ने अपनी सांसों को, चुपचाप एक रात, मौत की सीप में ढाल लिया था। कितना कुछ

बांधो ना नाव इक ठांव

उसने कालवेल की तरफ हाथ बढ़ाया ही था कि कमरे का दरवाजा खुला। वैरा बाहर निकला और उसकी आंखों में कुछ पढ़कर बोला—भीतर हैं, आप बैठिये—उसने चौखट पर खड़े-खड़े ही सब सुना और बैरे के टलने पर भीतर दाखिल हो गया। डाक बंगले के कमरे की ऊंची दीवारों पर टंगी बड़ी-बड़ी तस्वीरों को आंखों में समेटकर वह विनय-विनती भरे शब्दों को चुगला ही रहा था कि कमरे का भीतरी दरवाजा खुला और पहली देख में ही शालीन और संजीदा लगने वाली एक युवती, हलके गुलाबी रंग की साड़ी में पूरी सादगी लिए, नमूदार हुई। उसे देखते ही उसके हाथ अभिवादन की मुद्रा में जुड़ गये।

—जी···मैं···मुझे शुक्लाजी ने भेजा है···जो···मैं बहुत परेशान हूं ···आप भी मेरी कुछ मदद कीजिये···साहब से···

—साहब !

—जी-जी···आप भी किसी की बहन-बेटी हैं···उसने देखा सामने पच्चीस-सत्ताईस साल का एक युवक खड़ा है। चेहरे पर बेबसी, बेचारगी और बोल में यहूदी याचना लिए पहले तो वह सकपकायी। कुछ समझ ना सकी पर उसके आपे की टूटन और आंखों में उगी निरीहता को लखकर सौजन्यवश कह ही तो दिया—बैठिए ना, खड़े क्यों हैं। उसने सुना और अपने में पैठी कातरता को परे करता हुआ झिझक को झटकारकर बैठ गया। तभी दरवाजा खड़का और बैरा चाय लेकर दाखिल हुआ। उसने टेबल पर ट्रे रखते हुए कहा—पहले ही मैं दो कप ले आया हूं, साब और कुछ?

—बस, समझदार हो अपना एक चक्कर बचा लिया, उसने पल्ले सहेजते हुए कहा। बैरा मुसकान आंककर चला गया तो उसने फिर बात

का सिरा संभाला—

—आप किससे मिलने आये है ? उसने प्यालों में चाय ढालने के बाद बिस्किट की तश्तरी उसकी तरफ बढ़ाते हुए पूछा।

—जी···जी, मैं चीफ इंजीनियर शर्मा साहब से···मैं बेकार हूं। मुझे काम चाहिए···अगर आप···वह उसके चेहरे पर उभरे अजानेपन को देखकर आगे कुछ ना कह सका।

—लीजिये, पहले चाय पीजिये···और हां ये भी लें बिस्किट। इतना कहकर उसने अपना कप उठाया और हौले-हौले सिप करने लगी। कमरे मे एकबारगी सकपकायी-सी चुप्पी तैर गयी। उसने भी प्याला उठाया। चाय की भाप उसके नथुनो को छूने लगी।

चढ़ते सितम्बर की वह एक ठंडी सुबह थी। बडी खिड़की के शीशों के सामने पसरी झील की गोद मे पानी अभी उनींदा ही था। किनारे से जरा दूर उठे टीले पर खड़े डाक-बंगले की इमारत का धुंधलाता अक्स सूरज के छुई-मुई से उजाले मे लरज रहा था। नन्हा पवन-हिलोर गेंदे-गुलाब की गमक लिए जब तब खिड़की के परदों को सरसराकर कमरे में झांक जाता था। इस बार पवन झकोर काफी गदराया हुआ था। वह अपने पुराने स्वेटर मे झुरझुरा गया।

—पीजियें ना; चाय आपके हाथ में ही ठंडी हो जायेगी···मैं शर्मा साहब को···आगे वह बोला।

—जी क्या बताऊं···ऐसी आन पड़ी है कि···छः महीने में पांच हजार रुपये का इन्तजाम नही हुआ तो वे रिश्ता तोड़ देंगे और मेरी बहन कहीं की नहीं रहेगी। पिताजी रहे नही। बहन, मां और मैं हू।

—माइनिंग का डिप्लोमा है मेरे पास, पर बेकार ! वह जैसे जागा और टेप-रेकार्ड की तरह बजने लगा। बिस्किट कुतरते हुए जब-तब पलक उठा वह उसे देख लेती थी। वही कातरता, याचनामयी निरीहता, असहाय विकलता और चेहरे पर चमचमाता तनाव वैसा ही; ठीक बडे भैया का-सा। भैया को ऐसे ही तपते तनाव मे जकड़ा हुआ उसने देखा था—महीनों। और यह जकड़न-कसकन तभी ढीली हो पायी थी जब दीदी ने अपनी सांसों को, चुपचाप एक रात, मौत की सीप में ढाल लिया था। कितना कुछ

ना सुना-सहा था दीदी ने···उसने भी। भाभी ने कैसे-कैसे जहर बुझे तीर ताने थे···कैसे-कैसे तीखे वार किये थे !

—अपनी गृहस्थी खिचती नहीं-हमसे···ऊपर से बाप की औलाद का बोझ और ढोओ···अरे ! इस बाप की बेटियों को ब्याहने में लुट गये तो अपनी बेटियां कुआरी ही ना रह जायेंगी···नास हो इन बेटे-बेचुओं का··· मुए हाट लगाये बैठे हैं···अब कहां से जुटायें इतना दहेज-तिलक···भई अपनी मांग की सिंदूर साधनी है तो खुद खटो-कमाओ···संवारो अपना दहेज-सुहाग खुद···जितना बूता था उससे कहीं आगे बढकर पढा-लिखा दिया बीरा भौजी ने···अब कहां तक मरे कोई···ठीक-सा घर-बेटा देख सगाई-सगपन भी कर दिया···मरे बात बदलकर फरमाइश पर फरमाइश करें तो हम कहा से भरें उनका भरना···अब रोओ अपने भाग को···एक कुल-बैरन हमें जला-रुलाकर गयी अपने पुरखों के ठौर···

चार दिन का रोना-कोसना था, दीदी के लिए। पर मैं भी तो थी··· दीदी से दो साल ही तो छोटी हू···दीदी की तेरहवी हुई और मैंने दो शब्द उकेरकर एक पर्चा भाभी को थमा दिया। लिखा था—बैंक अधिकारी के रूप में मेरा प्रमोशन हो गया है, उदयपुर के पास एक गाव में खुली शाखा पर नियुक्ति भी। इसी माह की बीस तारीख को मुझे जाना है वहां··· बेटे-बेचुओं से चिरौरी ना करें···मैं ऐसा कुछ ना करूंगी जिससे आपकी नामोशी हो। करूंगी भी कुछ तो आपको बताकर। हीरा और मीरा मेरी अपनी हैं। उनके लिए जो बनेगा मैं करूंगी—हर महीने हम सब मिलकर ऐसा कुछ करें कि हमारी इन बेटियों को तो वह सब ना झेलना पड़े जो दीदी को झेलना पड़ा···भैया से पूछकर ही मैं घर से बाहर पैर निकालूंगी ···आपसे भी पूछ ही रही हूं। सामने आकर सब कहते झिझक होती है··· इसीलिए···आपने तो अपनापन ही दिया पर···

एक आगे के सोच में कहीं दूर उतर गया था तो दूसरी पल भर को पीछे कहीं खो गयी थी। दोनों अपने आपे में साथ-साथ ही लौटे।

—आप साहब से···मैं किसी मार्इस पर कहीं भी चला जाऊंगा। वह काम खतम कर चुका था।

—लेकिन मैं···मैं शर्मा साहब को नहीं जानती···आप शायद गलत

कमरे में आ गये हैं।

—यह कमरा नं० 7 नहीं है!

—नहीं यह नं० 8 है और इसमें मैं शैलबाला शर्मा ठहरी हूं···और जगह नहीं मिली-इसलिए यहां···और मैं चीफ इंजीनियर शर्मा साहब को नहीं जानती। आखिर उसे कहना पड़ा।

—जीऽ मैं तो कमरा नं० 7 में आया था···यह कमरा नं० 8 है···आपको तकलीफ दे डाली···आपने पहले ही क्यों नहीं बताया!

—आपको बहुत परेशान पाया और तभी बैरा चाय ले आया—दो कप के साथ बिना कहे; फिर-भला कैसे कुछ कह पाती कि···सही-सही तो अब जाना कि आप बजाय 7 के कमरा नं० 8 में आ गये हैं···शायद हड़बड़ाहट में···खैर···अच्छा ही हुआ···मैं यहां अनजान हूं···पहली बार आयी हूं। आपसे भेंट हो गयी···फतह नगर में बैंक की ब्रांच खुली है, उसी में ट्रांसफर पर आयी हूं।

—वह तो मेरा गांव है, मेरा घर—क्या संयोग है!

—तो फिर, मेरे लिए कोई मकान देखिये वहां।

—हमारे अपने मकान का एक हिस्सा खाली है—दो कमरे, रसोई वगैरा, देख लें—शायद आपको पसंद आ जाये।

—नेकी और पूछ-पूछ! मैं कल सवेरे आठ बजे पहुंच रही हूं—फतह नगर···आपके···

—घर···सचऽ मां-नीरा बहुत खुश होंगी, आपको अपने यहां पाकर। उसने बात को पूरा करते हुए कहा।

—मैं आठ बजे बस स्टैंड पर पहुंच जाऊंगा कल···अब जरा इंजीनियर साहब···

—लेकिन आपकी मां क्या सोचेगी।

—वही जो आप···बात का सूत जोड़-तोड़कर वह झटके से उठा और 'नमस्ते' कहकर कमरे से बाहर हो गया और वह हिलते हुए परदे को देखती रह गयी।

धूप धमकी और पीली पड़कर बिलमा गयी—रिश्ते-नातों की तरह, जैसे अंगरा कुजलाकर राख हो जाते है। झील के पार खड़ी पहाड़ियां—उनके मिलसिले कैसे तो भले लग रहे हैं—हरियाली की धायल का ओढ़ना ओढे झील के धुंधले आइने में अपनी धज निहारते—उसकी जब-तब झलकती लहरों में डूबते-तैरते। जैसे दोनों एक-मेक हों। लेकिन ऐसा है क्या ? नहीं। दोनो अलग-अलग हैं—अपनी-अपनी जगह। ना कोई किसी का है और ना होना है। बस, ऐसा लगता भर है कि पर्वत और पानी एक हैं···पर्वत और पानी का भला क्या मेल···एक पत्थर और दूजा लहर···तो फिर क्यों करे आस किसी से एक होने की···सदा के लिए किसी का होकर···किसी मे विलीन होकर जीने की···किसी से हमेशा-हमेशा के लिए बंधकर बढ़ने की···जहा बंधन है वहां भय है—उसके शिथिल होने-टूटने का···तो फिर बंधन बांधे ही क्यों ? रहना ही है तो एक जुडाव भर क्यों ना रहे, नाव के ठांव की भाति कि जब बंध लिए···जब हुमक हुई खुलकर सतरण कर लिया। कूल से बंधे भी तो एक-दूसरे के होने को सार्थक करते हुए। नाव अगर सदा के लिए कूल से बंधकर रह जाये तो उसका नाव होना ही बेमानी हो जायेगा और अगर कूल उसे अपने से बांधे ही रखे, मुक्ति देना ना जाने तो वह निरर्थक हो जायेगा। फिर कूल मे और ठूठ मे अन्तर ही क्या रह जायेगा। दूसरे को मुक्त करके ही मुक्ति का आनन्द महसूस किया जा सकता है।

आधा और आधा जोडकर एक 'इकाई' तो बनाई जा सकती है 'एकता' तो नही। नारी और पुरुष आधे-आधे जुड़कर शायद, अब एक नहीं होते। क्योकि वे वस्तु जो नहीं। जीते-जागते व्यक्ति है और व्यक्ति आधा नहीं होता, पूरा होता है—एक पूरी इकाई। अर्द्ध नारीश्वर की हम लाख आदर्श कल्पना कर लें पर नारी और पुरुष है अलग-अलग इकाइयां, जो एक और एक मिलकर दो होते हैं—आधा और आधा मिलकर एक नहीं। विवाह बंधन मे बंधकर भी दो ही रहते है। अपने आपको तोड़कर दूसरे से जुडने पर भी जुडाव की सधि, जुडन-रेख,
को तोडने की कसक, दूसरे को अपना
रहती है। मैं अपने आप को तोडकर जिस
उस हुमक-हुलास से नही जुड़ा या जुड

जीने के आनन्द को मार जाता है। तो फिर जुड़ा ही क्यों जाये किसी से। शरीर के अलावा भी सामाजिक जरूरतें या चलन हैं, जिनके रहते किसी से जुड़ा भी जा सकता है—बंधा-बांधा भी जा सकता है, किसी से, किसी को। लेकिन बंधन हो मुक्त होने के लिए। नौका-कूल बंधन की तरह। तभी बंधन सार्थक हो सकता है। तब कूल से बंधकर ना नौका को मलाल होगा और ना कूल को इसे मुक्त करके। क्योंकि तब बंधन मुक्त होने और मुक्त करने के लिए होगा। विवाह को ऐसा बंधन बना लिया जाये तो, क्या बुरा है? अनचाहे बंधन में बंधकर, एक-दूसरे को ढोते हुए, जीवन-गैल पर थके-थके कदम रखने में ऊब है, थकान है और फिर ठहराव ही ठहराव है—गति नहीं। पति-पत्नी एक टीम के खिलाड़ियों की तरह 'गोल' की तरफ बढ़ें। 'गोल' कर जायें या फिर हार-जीत जायें और फिर अलग होकर अपनी-अपनी जिंदगी को लौट जायें—खिलाड़ियों की तरह। ठीक है, विवाह कोई खेल नहीं। पर खेल जैसा ही तो बनकर रह गया है आज! नहीं, खेल जैसा भी नहीं। खेल में तो हार-जीत करने के बाद खिलाड़ी आजाद होते हैं अपना मनचीता जीने-करने के लिए। किन्तु विवाह के खेल में यह धारणा है ही नहीं। हारो या जीतो खेलते रहो अपने साथी के साथ—दाम्पत्य की गेंद धकेलते-धकियाते रहो, चाहे दोनों खिलाड़ी अलग-अलग दिशाओं में ही गोलदाजी क्यों ना करने लग जायें।

उसने तड़के ही पर्वत-पानी की गलबहियां देखी थी और फिर खिड़की से हटकर ऐसा ही लेख अपनी डायरी में टांक लिया था।

—आप तो भूले से आ गये थे तब डाक बंगले के मेरे उस कमरे में। मैंने तो आपके घर में ही घर बसा लिया···आपके मकान में ही घर ले लिया। मुहावरे की जद में जाती-जाती बात को उसने खींचकर थामा।

—पछता रही हैं शायद ?

—क्या कह रहे हैं आप! घर क्या मुझे अम्मा-नीरा और सब इतना अच्छा लगा है कि मैं तो अपने घर-अपनों को बिसार ही गयी यहां आकर।

—सच!

धूप चमकी और पीली पड़कर बिलमा गयी—रिश्ते-नातों की तरह, जैसे अंगरा कुजलाकर राख हो जाते है। झील के पार खड़ी पहाड़ियां—उनके सिलसिले कैसे तो भले लग रहे हैं—हरियाली की वायल का ओढना ओढे झील के धुंधले आइने में अपनी धज निहारते—उसकी जब-तब झलकती लहरों में डूबते-तैरते। जैसे दोनों एक-मेक हो। लेकिन ऐसा है क्या? नही। दोनों अलग-अलग हैं—अपनी-अपनी जगह। ना कोई किसी का है और ना होना है। बस, ऐसा लगता भर है कि पर्वत और पानी एक हैं···पर्वत और पानी का भला क्या मेल···एक पत्थर और दूजा लहर···तो फिर क्यों करे आस किसी से एक होने की···सदा के लिए किसी का होकर···किसी में विलीन होकर जीने की···किसी से हमेशा-हमेशा के लिए बंधकर बढ़ने की···जहां बंधन है वहां भय है—उसके शिथिल होने-टूटने का···तो फिर बंधन बांधे ही क्यों? रहना ही है तो एक जुड़ाव भर क्यों ना रहे, नाव के ठाव की भांति कि जब बंध लिए···जब हुमक हुई खुलकर संतरण कर लिया। कूल से बंधे भी तो एक-दूसरे के होने को सार्थक करते हुए। नाव अगर सदा के लिए कूल से बंधकर रह जाये तो उसका नाव होना ही बेमानी हो जायेगा और अगर कूल उसे अपने से बांधे ही रखे, मुक्ति देना ना जाने तो वह निरर्थक हो जायेगा। फिर कूल में और ठूठ में अन्तर ही क्या रह जायेगा। दूसरे को मुक्त करके ही मुक्ति का आनन्द महसूस किया जा सकता है।

आधा और आधा जोड़कर एक 'इकाई' तो बनाई जा सकती है 'एकता' तो नहीं। नारी और पुरुष आधे-आधे जुड़कर शायद, अब एक नहीं होते। क्योंकि वे वस्तु जो नहीं। जीते-जागते व्यक्ति हैं और व्यक्ति आधा नहीं होता, पूरा होता है—एक पूरी इकाई। अर्द्ध नारीश्वर की हम लाख आदर्श कल्पना कर लें पर नारी और पुरुष हैं अलग-अलग इकाइयां, जो एक और एक मिलकर दो होते है—आधा और आधा मिलकर एक नहीं। विवाह बंधन में बंधकर भी दो ही रहते है। अपने आपको तोड़कर दूसरे से जुड़ने पर भी जुड़ाव की संधि, जुड़न-रेख, तो आंख में आनी ही है। अपने को तोड़ने की कसक, दूसरे को अपना बनाने के सुख को भी तो सालती रहती है। मैं अपने आपे को तोड़कर जिससे जुड़ा या जुड़ी हूं वह तो मुझसे उस हुमक-हुलास से नहीं जुड़ा या जुड़ पाया। यह अहसास भी तो जुड़कर

जीने के आनन्द को मार जाता है। तो फिर जुड़ा ही क्यों जाये किसी से। शरीर के अलावा भी सामाजिक जरूरतें या चलन हैं, जिनके रहते किसी से जुड़ा भी जा सकता है—बंधा-बांधा भी जा सकता है, किसी से, किसी को। लेकिन बंधन हो मुक्त होने के लिए। नौका-कूल बंधन की तरह। तभी बंधन सार्थक हो सकता है। तब कूल से बंधकर ना नौका को मलाल होगा और ना कूल को इसे मुक्त करके। क्योंकि तब बंधन मुक्त होने और मुक्त करने के लिए होगा। विवाह को ऐसा बंधन बना लिया जाये तो, क्या बुरा है? अनचाहे बंधन में बंधकर, एक-दूसरे को ढोते हुए, जीवन-गैल पर थके-थके कदम रखने में ऊब है, थकान है और फिर ठहराव ही ठहराव है—गति नहीं। पति-पत्नी एक टीम के खिलाडियों की तरह 'गोल' की तरफ बढ़ें। 'गोल' कर जायें या फिर हार-जीत जायें और फिर अलग होकर अपनी-अपनी जिंदगी को लौट जायें—खिलाड़ियों की तरह। ठीक है, विवाह कोई खेल नहीं। पर खेल जैसा ही तो बनकर रह गया है आज! नहीं, खेल जैसा भी नहीं। खेल में तो हार-जीत करने के बाद खिलाडी आजाद होते हैं अपना मनचीता जीने-करने के लिए। किन्तु विवाह के खेल में यह धारणा है ही नहीं। हारो या जीतो खेलते रहो अपने साथी के साथ—दाम्पत्य की गेंद धकेलते-धकियाते रहो, चाहे दोनों खिलाड़ी अलग-अलग दिशाओं में ही गोलदाजी क्यों ना करने लग जायें।

उसने तड़के ही पर्वत-पानी की गलबहियां देखी थी और फिर खिड़की से हटकर ऐसा ही लेख अपनी डायरी में टांक लिया था।

—आप तो भूले से आ गये थे तब डाक बंगले के मेरे उस कमरे में। मैंने तो आपके घर में ही घर बसा लिया'''आपके मकान में ही घर ले लिया। मुहावरे की जद में जाती-जाती बात को उसने खींचकर थामा।

—पछता रही हैं शायद?

—क्या कह रहे हैं आप! घर क्या मुझे अम्मा-नीरा और सब इतना अच्छा लगा है कि मैं तो अपने घर-अपनों को बिसार ही गयी यहां आकर।

—सच!

—आपको अजीब लगा ?

—नहीं; ''नहीं तो''''

—तो''तो फिर ?

—फिर ! फिर क्या ? अच्छा लगा आपको यहां तो अच्छा ही है'' पर'''

—पर !

—यही कि आपको इतनी जल्दी भरोसा हो गया'''यहां आये हुए''' हमारे साथ रहते हुए दो महीने भी पूरे नही हुए और आपने तीन साल का किराया एडवांस दे डाला'''आपका ट्रांसफर ही हो जाये'''आपका चेक दिया मां ने मुझे आज'''

—आप हिसाब में कमजोर लगते है।

—पर मैं खुद तो उतना कमजोर नहीं ।

—किसने कहा आपको कमजोर ?

—कहा किसी ने नही, बना डाला है परिस्थितियों ने ।

—तो घबराना क्या—लडिए उनसे।

—लड ही तो रहा हू, आगे भी लडूंगा ही'''पर आप क्यों मेरी लड़ाई लड़ने पर उतारू हैं ? क्यो ?

—लगता है, लडने पर आप उतारू है मुझसे।

—नही-नही आपसे भला काहे की लडाई । ममता की आंच से झुलस-कर अम्मा इतना भर कह गयी आपके सामने कि—बेटे का ही तिलक मिल जाता तो बेटी की मांग भर देती—और आपने'''

—और मैंने 'तिलक' दे दिया !

—नहीं'''नहीं, आप बातों को उलझा देती हैं, मेरा मतलब'''

—आप नहीं लेना चाहेंगे मेरा 'तिलक' ?

—आपका तिलक'''मैं'''मैं लेकिन'''सब कुछ यूं ही'''

—यूं ही कौन देता है किसी को कुछ । कोई कुछ देता है किसी को बदले में तो कुछ लेना भी चाहता है । इतना कहकर वह टेबल के पास गयी और दराज में से एक कागज निकालकर उसे धवल की तरफ बढाते हुए बोली—

—लीजिए, इस कागज पर दस्तखत करके मुझे लौटा दीजिए तारीख

मत लगाना। इतना कहकर वह खुली खिड़की के सामने जाकर खड़ी हो गयी। उसने कागज थामते हुए सोचा मकान किराये की रकम एडवांस देने की रसीद या शर्तें होंगी। लेकिन ! उसने पढ़ा और सकते में आ गया। उसकी आंखें उसकी पीठ पर जमकर जड़ हो गयी।

आज मैं क्या कुछ कर गयी ! जब सब अजूबे कर गुजरी हूं तो लगता है, यह सब कैसे हो गया ? कौन करवा गया यह अनहोनी मुझसे ? मम्मी-बाबूजी ? भैया-भाभी। या फिर दीदी—उनकी बाहर निकल आयी बड़ी-बड़ी आंखें—उनका नीला पड़ा उजला बदन ? मम्मी-बाबूजी की हमारे बचपन से चली आती रात-दिन की किचकिच, उठा-पटक, झगड़ा-झंझट ? मायका रहा तब तक वहां चले जाने की मम्मी की धौंस-धबक या फिर घर-बार छोड़कर हरिद्वार-हिमालय में सन्यासी बन विचरने की बाबूजी की धमकी ? सुनते-सुनते यह सब और ऐसा कुछ, कभी हम सब डर से गये थे, पर आगे आदी हो गये—यह सब खटराग सुनने के।

एक दिन मम्मी ने गठरी बांधी थी—मायके जाने के लिए। देहरी लांघने को पग बढ़ाया था कि बाबूजी ने चोट की कि मम्मी वहीं धसककर बैठ गयी थी।

—दिया था बाबा-बीरा ने ऐसा कुछ जो गठरी बांध ले चली उन्हें सौंपने !

—अरे ! धातु-धन देना ही देना होवे···पाल-पोस कचन-सी कन्या सौंप दी। वो कुछ नहीं !

—दरखास्तें भेजी थी किसी ने ? रख लेते अपना कंचन-सोना अपने घर।

—अब आप रख लीजियो, अपनी बेटियां अपने हां।

—बेटियों को रखूं ना रखूं···पर तुझे तो रखने का नहीं अपने यहां। घर मेरा जमा-जत्था और निकल यहां से···जा, चली जा, जहां सींग समायें।

—अपना लत्ता-लूगड़ा गिन रहे···मैंने जो जवानी-जिंदगानी दे डाली

···वो क्या हुआ ?

—हिसाबी हो गयी है बड़ी···जिंदगानी चौपट कर दी मेरी···बॅटेम बुढ़ा दिया मुझे···अब निकलने की ठानी है तो निकल ही जा।

ऐसा ही कुछ चलता रहा बरसों-बरस। मम्मी तो नही निकली घर से पर हां, बाबूजी जरूर घर छोड गये एक दिन और फिर नही लौटे तो नही ही लौटे। पीछे मम्मी कभी उनके नाम को रोते-बिसूरते तो कभी उनको कोसते-झीकते एक दिन दुनिया से ही चली गयी। छोड़ गयी पीछे मुझे, दीदी को और भैया-भाभी को। भाभी तीर, भैया मजबूर।

कैसा कंटीला होता है नाता पति-पत्नी का! कैसा कठोर-कराल होता है बंधन विवाह का। साथ-साथ रहना-जीना जहर ही तो हो जाता है। इस जहर को पीते···अपने बच्चो को पिलाते···धीरे-धीरे रिस-रिसकर मरना ···स्लो-पाइजनिंग-सा···फिर भी साथ रहना-सहना! सोचकर ही सिहरन होती है···खून रगों में जमता-सा महसूस होता है।

कल रात नींद आंखों में घुमड़कर रह गयी पर पलकें नही मुंदी। खुली आंख-पलक भी नीरा को ही देखती रहीं सामने और कभी आंख झपकी तो भी इनमें नीरा ही आती रही। कभी नीरा बिसूरती, कभी रोती-सिसकती सहाय के लिए मेरी तरफ हाथ बढाती चीखती 'बचाओ-बचाओ'···पर दीदी थी कि उसे अपने साथ घसीटे लिए चली जाती—बुदबुदाती शैल तू कहे हिये-जिये की रही। मेरे साथ नही आयी···अकेली हूं—मेरे साथ रहेगी नीरा। वह दीदी के बोल सुनती और इसके बोल फूटते—'नही-नही' और वह बिस्तर से उठकर बैठ जाती। थोड़ी देर बाद अपने को संभालकर फिर लेट जाती। आंखें मूंदती तो नीरा-अम्मा पुतलियों में भर जाती।

—सायत टल जायेगी, भला घर-वर···बना-बंधा नाता टूट जायेगा नीरा का···तो फिर कहां-कैसे तो जुड पायेगा ?···बेटा रोजी-रोजगार से लग जाता···या फिर कही बेटों का ही तिलक-टीका साधकर बेटी को भर देती···बेटे की भी तो जिन्दगी का सवाल है···कैसे तो बांध दू इस-उस को इसके गले···!

—शैल दीदी! आप समझाओ ना अम्मा को—सब ठीक हो जायेगा ···अभी तो महीने पड़े हैं···भैया की आखिर कहीं तो लगेगी ही सर्विस।

—यह भली क्या समझाये ? लग भी गया तेरा भँवा तो कौन ले आयेगा तभी हजारों और सजा देगा तेरा दहेज-सुहाग ! अब तो घर की दीवारों का ही सहारा है।

—दीदी ! ये दीवारें मुझ पर गिर रही हैं—मुझे बचाओ···दीदी··· *मेरी अच्छी शैल दीदी !*

मेरे कानों में गुहार हुई और मैं उठकर कमरे में टहलने लगी। उधर आकाश में बिजली कौंधी और इधर मेरे दिमाग में एक जादू चमका। टेबल लेम्प ऑन करके अब मैं लिखने लगी—

मैं धवलकीर्ति शर्मा पिता श्री हरिकीर्ति शर्मा अपनी धर्म पत्नी श्रीमती शैलबाला शर्मा को सर्वेच्छा से अपने विवाह बंधन से मुक्त करता हूं—अपनी शैली में अपना जीवन जीने के लिए।

पति-पत्नी के रूप में हम साथ रहे और अब एक मित्र के रूप में एक-दूसरे से अलग होते हैं—बिना किसी आक्रोश, दबाव अथवा भय के।

इस तहरीर के सही होने की तसदीक में मैं अपने दस्तखत यहां करता हूं।

··· ··· ··· ···

(धवलकीर्ति शर्मा)

आज जब मैं डायरी के पृष्ठ का यह लेख अलग से टाइप कर 'धवल' को दे चुकी हूं, *तभी से एक धुकधुकी-सी छाती में उतर आयी है* और मैं फिर विस्तर में जा ढली हूं। कल की तरह आज भी आंखों में नींद नहीं है।

शाम घिरते आज ज्यों ही मैं बैंक से लौटी तो सर भारी था। किवाड़ पीछे धकेल ज्योंही आगे कदम बढ़ाया तो देखा एक बंद लिफाफा सामने पड़ा है। उलट-पुलटकर देखा—किसकी राइटिंग हो सकती है ? कुछ टोह ना पायी तो हड़बड़ाकर लिफाफा खोला। वही कागज था—मेरा टाइप किया हुआ। आखीर की 'डोटेड-लाइन' पर हस्ताक्षर में उभरा था एक नाम—धवलकीर्ति शर्मा। सब पढ़-देखकर मैं पसीना-पसीना हो गयी। सांसों में

उमस-सी भर गयी। ताजा हवा लेने के लिए कमरे से बाहर निकली ही थी कि सामने 'धवल' को आते देखा। उनकी निगाह मुझ पर पड़ी—ठिठकी पल भर को। थमे वह भी। पर दूसरे ही पल आगे बढ़ गये। मुझे लगा जैसे कल मुझ पर जमी उनकी आंख आज जाकर कहीं मुझसे हटी है। इसी उधेड़-बुन में डूबी थी कि 'नीरा' ने पीछे आकर हाथ से मेरी आंखें बंद कर दीं और पुलककर बोली—शैल दीदी, बतायेंगी, मेरे हाथ में क्या है?

—तुम्हारे हाथ में मेरी आंखें हैं।

—अजी, वो तो हैं ही, हमारे हाथ में क्या है? बूझो तो जानें।

—दूसरे हाथ में···कुंकुम-पत्री।

—कुंकुम-पत्री! वो भला किसकी?

—तुम्हारी—तुम्हारे ब्याह की, और किसकी।

—चलो हटो, आप बड़ी वैसी हैं।

—'बड़ी-वैसी' कैसी?

—बड़ी हैं आप, बड़ी मुझसे—उसने आंखों से हाथ हटाकर कहा। बड़ी हैं आप तो कुंकुम-पत्री पहले आपकी या मेरी?

—पर हुलस तो ऐसे रही हो जैसे···

—अरे, हुलसू-हरखू नहीं, भैया की सर्विस जो लगी है। पूरे बारह सौ मिलेंगे···लो खाओ मिठाई—इतना कहकर एक बड़ा-सा मिठाई का टुकड़ा मेरे मुंह में भर दिया।

—वाह भाई वाह! अच्छी खबर सुनाई यह। पर यह तो बता तनि तेरी नौकरी कब लगेगी?

—मेरी नौकरी! नीरा की पुतलियों से छलकती हर्ष लहरी अचरज में अटक गयी।

—हां-हां, तेरी नौकरी—मतलब तेरी शादी।

—शादी भला नौकरी है?

—नहीं तो, सहाबी है!

—मैं समझी नहीं।

—समझ। यदि सीता' को किसी तरह वनवास दे दिया जाता तो 'राम' जाते उनके साथ वन को या कि राज करते अयोध्या में—लक्ष्मण

जाते उनके साथ कि रहते राज-महलों में ?

—भला, सीता को वनवास होता ही क्यों !

—ठीक कहती है। सीता को, नारी को, क्यों होने लगा वनवास। वह तो घर में ही निर्वासित है, सुमित्रा की तरह···छोड भी यह सब, बता कहां लगी है तेरे भैया की सर्विस ?

—पहले तो सारा उछाह ठंडा कर दिया और अब करने लगी पड़ताल ···लो, देखो भैया आ गये, उन्ही से सब पूछ लो। सामने आते धवल को देखकर वह बोली।

—बधाई, बहुत-बहुत। अभी नीरा ने बताया, कहां लगी आपकी सर्विस, किस पोस्ट पर—कब जायेंगे ?

—अरे ! आप तो पूरी इन्क्वायरी कर बैठी ! शहर में ही। माइन्स-सुपरवाइजर, कल ही ज्वाइन करना है—धवल ने सौंधे सुर में बताया।

—अरे, नीरा ! क्या बातो के बोतान बांधे हो। शैल बेटी को मिठाई खिला भला। के सेंतमेत की चें-मैं गुइयां बस। तभी अम्मा वहां आ गयीं और खिले बोल बोली।

—देखिए, इस नीरा की बच्ची ने मिठाई खिलाई है कि मुंह सना है अब तक—आप हटाओ तो मिठास मुंह से ना हटे।

—अरे ! बेटी नौज हटाऊ तेरे मुह से मीठास। मैं तो मांगू-मनाऊ 'ठाकुर जी' से कि तेरी जिन्दगानी मे मीठास ही मीठास घुली रहे। क्यों धवल बोल तू ही। मां ने कहा।

—क्यो नही क्यो नही। शैल का मतलब पहाड़। यानि मीठास का पहाड. मीठा-पर्वत। धवल ने खिलते हुए कहा।

—मिठास का पहाड ! मीठा-पर्वत !! मिठास और मक्खी का संबंध नही जानते आप ! शैल ने बात को समेटते हुए कहा।

—कैसी बातें करती हैं दीदी ! अभी सीता को वनवास दिलवा रही थी और अब सब गुड गोबर कर दिया। नीरा बोली और उदास हो गयी।

—ज्यादा सोचने वाले ऐसा ही करते हैं नीरा। धवल ने कहा और फिर बात बदलकर बोला—इन्हें भी खिलाओ मिठाई और हमें भी। नीरा ने सुना और दोनो को मिठाई दी।

शैल और धवल के हाथों में मिठाई थी—जम की तस और नीरा उन दोनों को देख रही थी—ठगी-सी।

—और, कैसा चल रहा है ?

—एकदम ओ० के० बढ़िया।

—खूब कमाई हो रही है ?

—कमाई ! नहीं तो, वही जो तनख्वाह है।

—फिर ?

—ओह ! समझा, देखिए, जानती हैं आप—संसार में सबसे बड़ा आविष्कारकर्ता कौन हुआ ?···नहीं मालूम ! वह जिसने उधार की ईजाद की। धवल के लहजे में लापरवाही-सी थी।

—और सबसे बड़ा मूर्ख कौन गुजरा है दुनिया में ? वही जिसने उधार को लौटाने की बात की···लेकिन हां तिलक-टीका लौटाया जाता है ? पर शैल ने बात को तोलते हुए खरे शब्दों में पूछा।

—नहीं।

—और लौटाया जाता है तो कब ?

—जब सम्बन्ध तोड़ना हो।

—तो मैं क्या समझूं—मेरे खाते आपके जमा करवाये गए रुपयों को ?

धवल ने सुना और उसकी चहक-चुहल फुर्र हो गयी। दोनों के बीच सन्नाटा तन गया। वेटर ऑर्डर लेने आया तब भी उन्हें भान ना हुआ। शैल ने परसों ही धवल को पोस्ट-कार्ड लिखकर अपने शहर पहुंचने की बात के साथ लंच-टाइम में 'चेटक कॉफी-हाउस' में मिलने की बात कही थी। आज वहीं दोनों गुमसुम बैठे थे कि शैल ने चुप्पी तोड़ी—

—कहा था तब तुमने कि आपका 'टीका' सर आंखों पर और आज··· जानती हूं अब बेकार नहीं—अच्छा-सा केरियर सामने है···अच्छा टीका और अच्छा जीवन-संगी तुम्हें मिल सकता है, अब तुम्हें···

—देखो शैल, अपना सोचा मेरे मत्थे मत मढ़ो, तुम जानती हो अच्छी तरह कि मैं बतौर दया या सहायता के तुमसे पैसे नहीं लेता···लाख नीरा

ा सम्बन्ध टूट ही क्यों ना जाता। पर नीरा को उबारने के लिए जो जुगत
तोड़ी—मुझे पशोपेश में—ऊहापोह में—डाला…मुझसे सोचे ना बना
और मैंने दस्तखत कर दिये इस कागज पर…उसका असर मुझ पर क्या
हुआ ? जानती हो इसका नतीजा क्या हो सकता है ?

—लेकिन…

—पहले मेरी बात पूरी सुन लो। बिन बंधे ही मुझसे मुक्त होने की
जो बान तुमने ली है—लिखवाई है, उसे मैं क्या समझूं ? तिलक…तलाश
या तलाक !

—तुम भी यही बान ले सकते हो, वैसी ही तहरीर मुझसे लिखवा
सकते हो। आज, अभी या जब तुम चाहो।

—दस्तखत करने से पहले मैंने भी सोचा था ऐसा। पर जुड़ने से
पहले तोड़ने की बात मैं तब समझा था ना अब समझ सका हूं।

—इंसान को…इंसान से इंसान के रिश्ते-नाते को, उसके मन को…
मन की भावना को कब किसने जाना-समझा है जो हम जान-समझ लेंगे
…पर मुक्त होकर जीने की संभावना के साथ बंधकर जीना क्या बुरा
है। अच्छा लगेगा तुम्हें तब जब हम एक-दूसरे से सदा के लिए बंधकर जीने
के लिए इसलिए विवश होंगे कि मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकती और तुम मुझसे
छुटकारा नहीं पा सकते। एक-दूसरे को ढोते हुए हम जियें…एक जनम का
साथ निभ जाये वही बहुत है, जन्म-जन्मान्तर का साथ किसने देखा है ?

—लेकिन मैं अपने नये जीवन की शुरुआत अविश्वास के साथ नहीं
करना चाहता।

—फिर ?

—फिर भी, कैसी शादी पसंद करोगी—सिविल या सतफेरी ?

—जैसी तुम चाहो।

—अच्छा, जैसी हम दोनों चाहें। धवल ने कहा और फिर वे एक-दूसरे
की आंखों में डूब गये।

और शादी हो गई, नीरा की और शैल-धवल की भी। शैल शैलधवल हो

गई और धवल 'धवल' ही। बजता हुआ साज जहां सुरीला होता है वहा उसे सुरीला बनने के पहले बेसुरा भी होना पड़ता है। जीवन के साज को भी लय-ताल मे लाने के लिए उसे ऐसे-वैसे भी बजना-बजाना होता है। लेकिन सुर साधने से पहले ही इसे बेसुरा करार देकर परे कर दिया जाये तो, धवल ने सोचा था। कई बार सोचा था।

शैल बैंक से आयी थी। तभी धवल भी शहर से लौटे, थके-हारे, कुछ बेराग-बेसुरे से। आज माइन्स-मैनेजर से जरा सी कहा-सुनी हो गई थी—बडा कडवा है, हैकड़ भी, कभी बोलता है तो इतना मीठा···इतना मीठा कि, मीठेपन मे भी कड़वाहट तैरने लगती है। धवल के एक साथी ने कहा था और वह बिना कुछ कहे बस पकड़कर गांव आ गया था। कल रविवार भी था और पिछले हफ्ते वह घर आया भी नही था।

—पिछले शनि को आने को तो कह गए थे ?

—हूऽ···

—हू, क्या ?

—नही आया, बस। धवल ने आखों के डोरो में तनाव देकर तुर्शी से कहा।

—लो चाय। चाय का प्याला थामकर उसने शैल को छुईमुई-सी नजर से देखकर चुसकी ली और बोला—

—इतनी मीठी !

—मीठी ही तो है।

—इतनी मीठी कि कड़वी लगने लगी। उसे अपने माइन्स-मैनेजर की याद आ गई।

—मीठी चीज भी कड़वी लगने लगी ! क्यों ?

—क्यो ! क्योकि कडवी है। धवल ने एक-एक शब्द को अलग करके जोर देते हुए कहा। शैल थोडी देर चुप रही। स्वर मे सलोनापन आंककर कहा—वाश कर लो। अम्मा कल से पूछ रही है कि आज आप आओगे या नही। मिल लो उनसे।

धवल चुप, गुमसुम तना हुआ बैठा रहा तो शैल मन मारकर वहां से हट गई।

रात को जब शैल के शम्पू नहाये निखरे-बिखरे बालों को हाथ से महेजते-संवारते धवल ने उसकी आंखों में उतरना चाहा तो उसने जैसे उसे पलकों से बरजते हुए कहा—

—एक बात पूछूं ?

—पूछो, एक नहीं दो।

—जब मेरी मिठास तुम्हें कड़वी लगने लगे, तो मैं क्या करूं !

—तो···तो···मुझसे नहीं इस 'तहरीर' से पूछो···कि मैं क्या करूं। शैल के बालों में उलझी उसकी उंगलियां कंपकंपाकर अलग हो गयी। आंखों में उजाड़ बस गया। घड़ी ने दस का टंकारा ही दिया था कि दोनों करवट बदलकर मुड़ गए।

अजब संयोग था ! दोनों के विवाह की तारीख और धवल का जन्म-दिन एक ही दिन पड़ता था। धवल के शहर से आने के दो दिन पहले ही शैल ने बैंक से छुट्टी लेकर अपना कमरा ही नहीं सजाया पूरे घर को झाड़-पोंछ कर निखार दिया। वह शहर भी गयी और वहां बिना धवल से मिले ही उसके जन्म-दिन के लिए भेंट, फल, मेवे और उसकी पसंद की ढेर सारी चीजें ले आई थी, चुपचाप। शहर से धवल के मित्र-साथी और उसके बैंक के सहकर्मी आमंत्रित जो थे इस अवसर पर।

धवल आज हॉफ-डे करके ही गाव चला आया था और शैल का हाथ बटा रहा था। नीरा भी ससुराल से आ गई थी—अब अम्मा के साथ रसोई मे जुटी थी।

सब काम हो गया था। शैल अब सिंगार में लगी थी—नीरा उसके रूप-बनाव को निखार-उभार रही थी। हंसी-पुलक और आंखों से झरते हुलास से आज लगता ही नहीं था कि वह बैंक के मोटे-मोटे खातों मे उलझी रहने वाली शैल है। वह तो आज लाज लमी कजरा कढी नवोढ़ा-सी लग रही थी।

मेहमान जुटने लगे तो सब चीजें करीने से टेबल पर लगा दी गईं।

—भाई पहले तुम धवल थे अब शैल भी हो गये गोया। धवल के एक

संगी ने फिकरा ताना।

—'धवल-शैल' हो गए। यानि उजले पर्वत भये—दूसरे ने दागा।

—नहीं जी, मैं नहीं शैल-धवल तो यह हुई है। धवल ने लजाती हुई शैल को निहाल करते हुए कहा।

—अजी बात एक ही है—चाकू खरबूजे पर गिरे या खरबूजा चाकू पर।

—पर चाकू, चाकू है—*खरबूजा, खरबूजा*।

—कहां चाकू ले आये भाई। खरबूजे को खरबूजा ही रहने दो। अपने को गांधीवादी कहने वाले खद्दरपोश मुखियाजी बोले।

—हां-हां, खरबूजा, खरबूजे को देखकर रंग जो बदलता है, इधर देखिए—साहब और साहिबा पर एक-दूसरे का रंग चढ़ा है···मिसेज ने नारंगी साड़ी धारी है तो मिस्टर ने नारंगी बुशर्ट पहना है और वैसे ही शेड का पेंट भी।

—ठीक कहते हैं आप सोहबत का असर तो होता ही है।

—होता होगा भाई, हमारे शायर तो कह गये हैं—

कौन कहता है कि सोहबत का असर होता है!

जिन्दगी भर हसीनों में रहा और हसीं हो ना सका।

इस शेर पर वह ठहाका लगा कि अम्माजी रसोई से बाहर आ खड़ी हुईं।

जब सब खा-पीकर शुभकामनाएं देकर चले गये तब रात के ग्यारह बज रहे थे। सब निपटाकर अपने कमरे में आते-आते बारह बज गए। शैल ने आते ही धवल के गले में झूलते हुए पूछा—

—बतलाइये तो भला, हम क्या लाये है आपके लिए तोहफा।

—तुम···तुम्हारी थाह कौन पाये भला!

—फिर भी?

—वही; जो तुम्हें अच्छा लगता है और मुझे भी।

—यह भी कोई बात हुई, भला। शैल ने उसकी आंखों में आंख पिरो-कर कहा।

—*अच्छा, तुम बताओ शैल कि मैं तुम्हारे लिए क्या लाया हूं*। धवल ने उसे बाहों में सहेजते हुए कहा।

—वही, जो मुझे और तुम्हें···धवल ने उसकी बात काटी और बोला—

—फिर भी।

—अब बताओ भी, जो लाये हो, कहां छिपा रखा है ?

तुम कहती आई हो ना कि बिना कुछ लिए कौन देता है किसी को कुछ ···इतना बोल उसने हाथ बढ़ा आलमारी के ऊपर से एक पेकेट उतारकर शैल को थमा दिया।

—अब, मुझे दो, जो लायी हो मेरे लिए।

—अच्छा ! तो फिर लीजिए। इतना कहकर अपने ब्लाउज में हाथ डालकर एक कागज का छोटा लिफाफा निकाला और उसे थमा दिया। फिर झुककर धवल के लाये पेकेट को खोला। देखा एक कीमती बनारसी साड़ी है और उस पर एक कागज का छोटा लिफाफा रखा है। दोनों की आंखें चार हुईं। दोनों ने साथ-साथ लिफाफे खोले, धवल दंग रह गया। शैल ने धवल के दस्तखत-शुदा उस 'मुक्ति-पत्र' को लौटा दिया था जिसे उसने तब अपने विवाह के पहले उससे लिया था। उधर शैल जड़ हुई खड़ी थी। उसके हाथों मे एक कागज कांप रहा था। वैसा ही मुक्ति-पत्र, ठीक वैसी ही इबारत ! उस पर पिन से लगे फ्लेप पर लिखा था—हो सके तो इस पर हस्ताक्षर कर देना—मेरे जन्म-दिवस और अपने विवाह की पहली वर्ष-गांठ के अवसर पर भेंटस्वरूप।

दोनों ने पलक ठिठकाकर एक-दूसरे को देखा। उन्हे लगा जैसे पहले भी वे कहीं मिले हैं।

वर्थ-डे पार्टी

—ममी-मनी, स्कूल मे सब मुझे वी० आई० पी० कहते हैं !

—वी० आई० पी० कहते हैं ?

—वी० आई० पी० क्या होता है ?

—वी० आई० पी० होता है बड़ा आदमी।

—बडा आदमी ! पर ममी मैं तो अभी बहुत छोटा हूँ, पाच साल का।

—तो तुम बडे आदमी के बेटे हो ना, इसीलिए सब तुम्हें भी बड़ा आदमी समझते हैं।

—बडा आदमी कौन होता है ? सभी तो बड़े है।

--बडा आदमी वह होता है जो बड़े काम करता है। सबकी भलाई के काम।

—तो ममी पापा बडे आदमी थे ?

—हा, बेटे ! बहुत बडे !

—ग्रैंड मा से भी बड़े ?···वो भी तो बहुत···उनसे भी बडे ?

—है ! हां; क्या कहूं !

—ग्रैड मा बहुत अच्छी हैं···पापा तो हमे छोडकर चले गये···ममी बड़े आदमी भी मरते हैं ?

—क्यों नहीं, सब मरते हैं।

—ममी पापा बड़े थे या ग्रैंड मा ?

—ग्रैंड मा बडी हैं बेटे।

—तो पापा कैसे मर गये···ग्रैंड मा तो···

—च् च् कैसी बातें करते हो ! तुम्हारे पापा तो एक्सिडेंट···

—ममी ! पापा ने हवाई जहाज क्यों उड़ाया ?

—ओह अब मैं क्या बताऊं···तुम बहुत बोलने लगे हो।

—आप भी तो बोलती हैं। माइक पर बहुत। पापा भी बोलते थे?

—हां, बोलते थे, अब तुम सो जाओ। रोज आया से भी इतनी बातें करते हो?

—नहीं ममी! ग्रेंड मा भी बोलती हैं?

—हां, भाई! तुम्हारे पापा भी बोलते थे, ग्रेंड मा भी बोलती हैं और मैं भी बोलती हूं।

—पर आप ग्रेंड मा से क्यों नहीं बोलतीं?

—अब तुम चुप भी करोगे या नहीं, बोले चले जाते हो।

—आप सब बोलते हैं, और हमें चुप करते हैं। ममी आप हमें ग्रेंड मा के पास क्यों नहीं जाने देतीं···आज हमारा बर्थ-डे था, पार्टी में सब आये ग्रेंड मा ही नहीं आयीं···उन्होंने हमें अपने यहां बुलाया था। आपने हमें जाने क्यों नहीं दिया?

—इसलिए नहीं जाने दिया कि वो तुम्हें 'यूज' करेंगी।

—वो कुछ नहीं करेंगी, वो तो हमें प्यार करेंगी—बहुत-बहुत प्यार करेंगी।

—यही तो।

—तो क्या? हमें प्यार करेंगी तो क्या होगा?

—होगा मुझे नुकसान और क्या होगा?

—प्यार करने से, मुझे प्यार करने से, नुकसान होता है!

—हां, होता है, राजनीति में होता है···तुम्हें कैसे समझायें।

—मुझे प्यार करने से नुकसान होता है तो, वो क्या कहा आपने, 'राज' वाली बात, उसे आप छोड़ क्यों नहीं देतीं?

—अब तुम सोओगे भी या बतियाते ही रहोगे, देखो रात हो गयी—ग्यारह बज गये···सुबह स्कूल भी तो जाना है।

—नहीं हम ग्रेंड मा के पास जायेंगे, वो हमें प्यार करती हैं—फोटो खिचवाती हैं।

—हम तुम्हें प्यार नहीं करते बेटे!

—करती हैं···हम दोनों के पास रहेंगे···ग्रेंड मा···

—क्या ग्रेंड मा-ग्रेंड मा लगा रखा है। तुम हमारे पास ही रहोगे

किसी दूसरे के पास नहीं।

—ग्रैंड मा अपनी नही दूसरी है?

—हा, दूसरी है।

—कैसे दूसरी हैं? क्यों दूसरी हैं?

—क्योंकि हमारी पार्टी अलग है और उनकी पार्टी अलग।

—ममी! मैं किस पार्टी में हू?

—हमारी पार्टी मे। अब आंखें मूंद लो और सो जाओ।

—ममी! हम आपकी पार्टी में भी रहेंगे और ग्रैंड मा की पार्टी में भी···हम आप दोनो की पार्टी मे रहेंगे।

—अब सो भी जाओ।

—नही सोते···ममी जिंदाबाद, ग्रेंड मा जिंदा···

—अब चुप···एकदम खामोश। ममी ने कहा और उसके मुंह पर हाथ रख दिया, फिर उसकी पलकें ढाप दीं।

—चलो उठो भारत···नहा लो···स्कूल को देर हो जायेगी। सूरज ने आकाश मे उजाला उकेरा तो ममी ने कहा।

—हम स्कूल नही जायेंगे।

—क्यो नही जाओगे स्कूल? आज तुम्हारी आया छुट्टी पर है तो क्या। हम तुम्हें तैयार किये देते हैं। अच्छे बच्चे रोज स्कूल जाते हैं। तुम तो बहुत अच्छे बच्चे हो।

—सब झूठ है। हम अच्छे बच्चे होते तो कल ग्रैंड मा हमारी बर्थ-डे पार्टी मे नही आती?

—नही बेटे! यह बात नही। उन्हे जरूरी काम हो गया होगा। तुम्ही तो कल कह रहे थे कि ग्रैंड मा बहुत बड़ी हैं, उन्हे बहुत काम रहते हैं।

—पहले तो संडे-संडे हमे अपने यहां बुलाती थी। अब नही बुलाती। ममी क्या अब वो हमे प्यार नही करती?

—करती है बेटे; करती हैं। अब तुम उठो भी, स्कूल को देर हो

जायेगी।

—ममी ग्रैंड मा पापा को भी प्यार करती थी?

—हा-हा, क्यों नही।

—आपको भी प्यार करती हैं? सपाट, निपट और बेरग चुप्पी।

—आप चुप क्यों हो गयी। ग्रैंड मा आपको भी प्यार करती हैं। अलबम मे फोटो देखी है हमने—ग्रैड मा आपके माथे पर चुम्मी कर रही हैं।

—अब तुम उठो और चटपट तैयार हो जाओ स्कूल के लिए।

—कहा ना, हम स्कूल नही जायेंगे।

—आखिर क्यों नही जाओगे?

—बच्चे हमे छेडते हैं—खिझाते हैं।

—क्या कहते हैं।

—बोलते हैं—भारत की ममी और उसकी ग्रैंड मा के बीच झगडा है इसीलिए उनमे अलग रहती हैं।

—अलग रहने में क्या बुराई है? इस बात का तुम बुरा क्यो मानते हो?

—ना-ना सब चुटकी बजा-बजाकर खिझाते हैं—भारत की ममी और ग्रैंड मा मुकदमा लड रही हैं···और उसके पापा भी···

—बकने दो जो बकते हैं, तुम अपनी पढ़ाई से मतलब रखो।

—ममी मुकदमा क्या होता है?

—जाओ भी; होता है कुछ, बडे होकर सब समझ जाओगे।

—ममी मैं बड़ा कब होऊगा?

—बराबर स्कूल जाओगे, खूब मन लगाकर पढ़ोगे तो जल्दी बड़े हो जाओगे।

—ममी! पापा होते तो हम ग्रैंड मा से अलग रहते—मुकदमा लड़ते?

—क्या बेतुकी बातें करते हो—खोपड़े मे और भी कुछ है? ममी झल्लाईं और बोली—ड्राइवर, बाबा को ले जाओ—स्कूल को देर हो जायेगी। भारत ने सुना और लापरवाही से पास के टेबल पर पड़ा अलबम

उठा लिया। ममी ने उसे घूरकर देखा और अलदम झपट लिया तो वह वहा से हट गया।

—आया, आया! देखिए तो आज के अखबार मे ग्रैंड मा का कितना बड़ा फोटो छपा है। उनके सामने कितने लोग बैठे हैं—आदमी ही आदमी। अखबार को हवा मे हिलाते हुए वह आया के सामने जा खड़ा हुआ और अखबार फैलाकर पूछा—

—आपने देखा है फोटो ?

—हा, देखा है, बाबा।

—ग्रैंड मा क्या कह रही हैं ?

—भाषण कर रही हैं—बोल रही हैं।

—सबसे बोलती है तो फिर हमसे क्यों नही बोलती। आज तो बड़ा दिन है। सब एक-दूसरे से खुश-खुश बोल रहे हैं'''आपने भी हमें बड़ा-सा गुलाब दिया'''ग्रैंड मा से हम नही बोल सकते; टेलिफोन से सभी तो दूर बैठे लोगो से बात करते हैं। आया बताओ ना टेलिफोन से कैसे बात होती है ?

—बाबा! यह तो बहुत आसान है—पहले चोगा उठाओ। जिससे बात करनी है उसका टेलिफोन नम्बर डायल करो, उधर घंटी बजी,- हलो कहा और बात हुई। खुशी-खुशी आया कह गयी।

—ग्रैंड मा का टेलिफोन नम्बर क्या है ?

—अरे! वो भी बहुत आसान है—123321

—ओह गॉड यह तो बडा नम्बर है।

—इसमे क्या बड़ा है ? पहले वन्, टू थ्री और फिर उसका उलटा थ्री, टू, वन् बस।

—आया! आप ग्रैंड मा से टेलिफोन पर बात करवा दो ना। प्लीज। आया ने इसरार सुनी तो चहक बन्द हो गयी—चेहरे पर खिले खेल ठहर गये। जरा सोचकर बोली—

—बाबा! बात की भली कही—हम आपको ग्रैंड मा के यहा ही ले

चलेंगे। फिर खूब जी भरके बातें कर लेना उनसे—चुम्मी लेना और देना —साफ बोलना उनसे एक चुम्मी लेंगी तो बदले मे चुम्मी देंगी। भारत तो जैसे वहा होकर भी वहां नही था। उसे यों गुमसुम देखकर आया ने कहा —कहा खो गये बाबा। हमने क्या कहा; सुना!

—पर कब चलेंगे ग्रैंड मा के पास?

—ममी से पूछकर चल देंगे। अरे हां'''देर हुई खाना तो खा लो।

—खाना हम ममी के साथ खायेंगे। उन्हें आने दो।

—पर ममी तो दौरे पर गयी है—कल भी नही परसों आयेंगी।

—आया ममी बार-बार दौरे पर क्यों जाती हैं—वहां क्या करती है?

—अरे! अब तो बड़े हो गये—इतना भी नही जानते! ममी अपनी पार्टी के प्रचार-बढ़ावे के लिए दौरे पर जाती है।

—ग्रैंड मा भी जाती हैं दौरे पर?

—हां जाती हैं।

—पर जब हम साथ-साथ रहते थे तब ग्रैंड मा रोज सुबह हमें अपने पास बुलाती थी, दुलारती थी। टॉफी देती थी—चुम्मी देती थी।

—वो ठीक; ममी भी तो सब करती हैं।

—ममी की पार्टी और ग्रैंड मा की पार्टी अलग-अलग हैं ना?

—हां, अलग, एकदम अलग—झण्डा भी अलग। देखते नही सामने अपने पापा के फोटो की फ्रेम मे लगा झण्डा—यह तुम्हारी ममी की पार्टी का झण्डा है।

—और ग्रैंड मा की पार्टी का झण्डा? वो कैसा है?

—तीन रंग का झंडा; तुमने नही देखा?

—हां-हा देखा है, समझ गया।

—तो अब खाना खा लो हमारे अच्छे बेटे—भारत ने सुना और चुप हो गया। कुछ सोचता हुआ-सा चुपचाप।

कल छुट्टी का दिन था। शाम ढलते ही वह बैठा और रात घिरते-घिरते उसने अपना होम-वर्क कर लिया और फिर अपनी ड्राइंग-बुक और कलर-

चॉक्म लेकर टेबल पर झुक गया। थोड़ी देर बाद सर उठाया तो मनचीता, कागज पर, रंगों से बना था। उसने टेबल लैम्प के दूधिया उजाले में कागज को झुलाया तो एक झण्डा लहरा-सा गया। उसके मन में भी एक हुमक भरी लहर उठी और उसने कागज को अपने ब्रश की पतली डंडी में साथ गोंद से चिपका दिया, और तनिक सोचकर गर्दन हुलाई फिर इस झंडे को अपने पापा के फोटो के फ्रेम के बायें जा ठहराया। अब वहां दो झंडे थे, एक ममी की पार्टी का और दूसरा ग्रेंड मा की पार्टी का—बीच में थे पापा और सामने था भारत—हुमकता, मन-ही-मन चहकता। हुलास भरे मन में एक सोच और लहराया और दौड़कर वह टेलिफोन के पास जा पहुंचा। आया इधर-उधर थी—अपने और उसके सोने की तैयारी में। ममी भी नहीं··· आया भी गायब। नीचे का होंठ ऊपर चढ़ाकर उसने भवों में बल डाले, आंखें चमकाई और उचारा—वन-टू-थ्री, थ्री-टू-वन और झट चोगा उठाकर और डायल में अपनी शहतूत-सी नन्ही उंगली डाल वन-टू-थ्री-थ्री-टू-वन् नम्बर घुमा दिये। और नरम नन्ही धुकधुकी के साथ स्याना-समझू बनकर कान से चोगा लगा चुप हो गया। पल झपके कि ट्रिन-ट्रिन हुई और फिर आवाज आई—हलोऽ कौन बोल रहे हैं?

—हम हैं भारत, ग्रेंड मा से बात करेंगे।

—भारत हैं! अच्छा, ठहरिये, बुलाते हैं ग्रेंड मा को। थोड़ी देर चुप्पी फिर हलचल उसमें—'भारत बेटे' जाने-पहचाने रसभीने बोल सुने तो वह ठुनककर बोला—ग्रेंड मा है···हां तो हम उनसे नहीं बोलते।

—क्यों बेटे? क्यों रूठ गये हमसे—हमारी खता-कसूर?

—आप सबसे बोलती हैं, वैसे हमसे ना बोलें···आप हमारे बर्थ-डे पर क्यों नहीं आयी बताइये?

—बेटे! हमें माफ करो···लेकिन तुम्हें हमारी 'प्रेजेंट' तो मिल ही गयी होगी! सवालिया 'क्यों' कहीं गहरे जाकर पैठ गया था जो उन्होंने लरजती आवाज में कहा।

—'प्रेजेंट' तो ढेर सारे मिल गये पर 'मा' आप तो ना मिली।

—सॉरी बेटे···वेरी सॉरी।

—क्या सॉरी, आपने अभी तक तो चुम्मी भी नहीं की हमारे···पहले

तो···

—चुम्मी ! हां-हां बेटे क्यों नही···लो हम तुम्हें चुम्मी करते हैं लो सहेजो हमारी गहरी-घनी दुलार भरी चुम्मी···और जब टेलिफोन पर लहराती हुई चुम्मी उभरी तो भारत ने उसे अपने दाहिने गाल पर और फिर बायें गाल पर सहेज लिया। फिर आवाज आई—लो भाई बस।

—अभी बस कहा। याद है आपको एक के बदले दो चुम्मी का अपना प्रोमिज !

—हां-हां, क्यों नही। लो हम अपना गाल आगे करते है, करो तो भला चुम्मी। और उसने जवाब मे एक के बाद एक करके चार चुम्मी जड दी चोगे पर। और फिर मगन होकर बोला—

—ग्रेंड मा ! चुम्मी बस···और आगे ?

—आगे और क्या बेटे ?

—हेप्पी बर्थ-डे भी नही कहा आपने और फिर आज बडा दिन भी तो है, भूल गयी !

—नही तो बेटे हेप्पी बर्थ-डे टू यू और बड़े दिन की भी बहुत-बहुत मुबारकबाद—अगेन···हेप्पी बर्थ-डे टू डीयर भारत तारो की जिन्दगी जिओ तुम···जितन हैं तारे उतने बरस जिओ···अच्छे और बडे आदमी बनो।

—थैंक यू ग्रेंड मा। आपने सब अच्छा कहा पर···

—पर ! और क्या बेटे ?

—आपने यह तो कहा ही नही कि हमारे यहां हमारे पास आओ !

—ओह ! सॉरी, भाई ! तुम इतनी मीठी बाते करते हो कि उनकी मिठास में खोकर हम सब भूल जाते है···तो आओ हमारे पास, जब जी चाहे। ममी से पूछकर हमारे यहा आ जाओ। हम हमारे भारत को बुलाते हैं···तो आ रहे हो ना ? भारत ने सुना तभी सामने आया आती हुई दिखाई दी। उसने खट से चोगा रख दिया। बात का तार जहां था वही से कट गया।

—क्या हो रहा था भारत, टेलिफोन पर बात कर रहे थे ? आया सामने तनी खड़ी थी पर आवाज बुझी-बुझी सी। फिर बोली—

—हम पूछते हैं। किससे बात कर रहे थे बोलो ? कहते क्यों नही कि

ग्रेंड मा से वात कर रहे थे।

—हां, ग्रेड मा से वात कर रहा था।

—सच !

—सच, अच्छे वच्चे झूठ नही बोलते।

—नम्बर किसने वताया ?

—आपने, भूल गयी 12332। आया ने सुना और 'ओह माऽ' कहकर सर थामकर कुर्सी मे धंस गयी।

ममी आज झल्लाई हुई थी—तमतमाई हुई भी। अपने ऑफिस मे पैर पटकती हुई इधर से उधर घूम रही थी। वालों की लटें माथे पर बिखर-बिखर जाती थी। सीधे हाथ मे साडी का पल्लू तना था। आया कापती हुई सामने खडी थी।

—तो बाबा और ग्रेंड मा की मुलाकात टेलिफोन पर हो गयी ! चुप्पी से भी गहरी चुप्पी और वेहिल सन्नाटा। जवाव क्यो नही देती तुम ?

—जी।

—जी क्या ? साफ-साफ बताओ टेलिफोन उधर से हुआ था या इधर से ? तुमने किया—मिलाया फोन ?

—जी नही मैंने नहीं मिलाया।

—तो फिर उधर से हुई कॉल ?

—जी मैं नहीं जानती।

—यह तो जानती हो कि बाबा को ग्रेंड मा का टेलिफोन नम्बर किसने बताया ? फिर चुप्पी।

—बोलती क्यों नही, तुमने बताये थे नम्बर उसे ?

—जी।

—क्यो क्या जरूरत थी। कितना-कुछ मिला उधर से ?

—मेडम ! इलजाम न लगायें प्लीज। वैसे ही वात-बात मे वावा के पूछने पर बता दिये थे—अनजाने में।

—बता दिये थे और उसे याद रह गये छः डिजिट्स ?

—इतने आसान नम्बर हैं···

—हुआ करे, लेकिन मुझे बेवकूफ बनाना आसान नहीं। आज ही पना हिसाब समझ लें और छुट्टी। इतना कहकर मेडम धम्म से सोफे में ब गयी। थोडी देर गुमसुम रही फिर घंटी घन्नाई।

—यस मेडम। पी० ए० सामने था।

—वो आज प्रेस कान्फ्रेंस कितने बजे होनी है? और हां पार्टी का वाइज्ड-प्रोग्राम टाइप हो गया?

—यस मेडम, सब तैयार है। प्रेस-कान्फ्रेंस आज शाम को छः बजे । मैंने सभी वाइटल-इश्यूज के ब्रीफ तैयार कर दिये है। चाहे अभी नजर ाल लें।

—हां, ले आओ। कल हमारी गैर मौजूदगी मे यहा घर मे जो हुआ ालूम है?

—यस मेडम, बाबा के 'अनकाशस-माइंड' में ग्रेंड मा की जो हीरोइक इमेज' है उसके रहते वह आपको अलगाव की निगाह से देखेगा···और यू ार जुड़ने लगे तो हमें बड़ी राजनीतिक उलझनें झेलनी पड़ेंगी।

—हू, यह तो है ही।

—आपने आज ही आया की छुट्टी करके ठीक नही किया। इससे और नये गुल खिल सकते है। मैंने उसे रोक लिया—थोड़े दिनों के लिए। बंगले के बाहर ना जाने पाये, इसका इंतजाम भी किये देता हू।

—ठीक है। कुछ अखबारों मे 'बाबा' के 'किडनेप' किये जाने की खबरें छपी हैं।

—सही है मेडम, आज की प्रेस कान्फ्रेंस मे कोई ना कोई इस मुद्दे पर भी सवाल करेगा, और भी सवाल···

—सवाल-सवाल···अभी सवाल बाबा के बदले हुए रुख का है। उसके कमरे में जाकर देखा है—उसने क्या किया है?

—जी हां, देखा है वो झंडा।

—उसने मेरे घर मे अपनी ग्रेंड मा का झंडा रोप दिया!

—उसे रोकिये मेडम, ऐसी खबरें बाहर जायेंगी तो उन्हें 'केपिट्लाइज' किया जायेगा—बात बेढब हो जायेगी, सधे हुए सूत हमारे हाथ से निकल

जायेंगे।

—आज की प्रेस कान्फ्रेंस में 'बाबा' की बात आने दो, सब सूत सही हो जायेंगे।

—बेटे पढाई कैसी चल रही है ?

—अच्छी, बहुत अच्छी। हमने आपके और पापा के नामों की स्पेलिंग सीख ली, अपने घर का पता भी हम पूरा लिख सकते हैं—वह ममी के पैरों से लिपटकर बोला।

—और ग्रेंड मा के घर का पता ? ममी ने तनकर तुर्श आवाज में पूछा।

—ग्रेंड मा का नाम लिख सकते है, उनके घर का पता नही मालूम।

—और टेलिफोन नम्बर ?

—वो मालूम है। हमने कल ग्रेंड मा से बात की थी।

—अच्छा ! क्या बोलि बेटा ? ममी अब मीठी मिसरी थी।

—हमने रूठकर पूछा उनसे—आप हमारी बर्थ-डे पार्टी मे क्यो नही आयी ?

—क्या कहा उन्होने भला ?

—कहती क्या सॉरी-सॉरी करने लगी।

—और ?

—और क्या ? फिर हमारे चुम्मी, फिर उनके चुम्मी। चुम्मी ही चुम्मी। बोली तारो जितनी उम्र पाओ।

—अपने घर आने को नही कहा उन्होने ?

—कहा कि मम्मी से पूछकर आना कभी भी'''ममी हम ग्रेंड मा के पास कब जायेंगे ? कल जायें ?

—चले जाना बेटे। पहले अपने हॉफ-ईयरली-टेस्ट तो हो जाने दो।

—तो हम ग्रेंड मा से कह दें।

—हम कहलवा देंगे, उन्हें बार-बार डिस्टर्ब करना ठीक नही। वो बहुत बिजी रहती है।

—अपने पापा के फोटो के पास झंडा लगाने को किसने कहा तुम्हें ।
—किसी ने नहीं ।
—फिर ?
—फिर क्या ? हमारे मन में आया । हमने बनाया और हमने ही लगाया, ममी ! आपकी पार्टी अलग और ग्रेंड मा की अलग, हैं ना ?
—हां; क्यों ?
—और पापा की ?
—*पापा की ! अब वो तो…*
—पापा होते तो किस पार्टी मे होते, ग्रेंड मा की या आपकी पार्टी में ?
—मैं क्या बताऊं, तुम्हीं सोचो और बताओ ।
—हम बताएं ! नहीं बताते । और वह वहां से भाग खड़ा हुआ ।

—*आपने अखबारों में वह खबर पढ़ी होगी जिसमें आपके बेटे भारत के* अपहरण की बात कही गयी है। इस विषय मे आप कुछ कहेंगी ? प्रेस-कान्फ्रेंस के आखीर मे किसी ने यह सवाल दाग ही तो दिया ।

—मैं भारत को राजनीति के दायरे मे लाने से हमेशा गुरेज करती रही हूं । वह बहुत छोटा है और अभी 'दो और दो चार' सीख रहा है । हो सकता है उसके अपहरण का हौआ मुझे नर्वस करने के लिए खड़ा किया गया हो। पर इसका मुझ पर कोई असर नहीं होना है । इस खबर में कोई सार भी शायद ना हो। लेकिन लगने लगा है कि अब भारत को 'दो और दो पांच' का पहाड़ा पढ़ाने की चालें चली जाने लगी हैं ।

—वह कैसे—वह कैसे ? मीडिया वाले चकित रह गये । मेडम प्लीज इसे जरा एलोब्रेट करेंगी ।

—बात यह हुई कि कल आया के इधर-उधर होने पर मेरी गैर-मौजूदगी में, 'बड़े घर' से टेलिफोन-कॉल हुआ और दादी-पोते में देर तक बात हुई—मेडम थमी और जमा लोगों के चेहरे पढ़ने लगी ।

—बतायेंगी कि क्या बात हुई ?

—बात जो होनी थी वही हुई । पूछिये कि उसका नतीजा क्या हुआ ?

नतीजा यह हुआ कि भारत ने अपने पापा की फोटो फ्रेम में अपनी ग्रैंड मा की पार्टी का झंडा बनाकर खोंस दिया। यह सुनना था कि सब एक-दूसरे का मुंह जोहने लगे।

—इस नुक्ते पर आप कोई वक्तव्य देना चाहेंगी ?

—मुझे इतना ही कहना है कि मुझे हर मोर्चे पर, यहां तक कि ममता के मोर्चे पर भी—यदि ममता का भी कोई मोर्चा है तो, विरोधी तोड़ना चाहते हैं। लगता है अब मां से बेटे को छीनने की जुगत जोड़ी जा रही है।

—आपका बेटा आपके पास है, बात भर कर लेने से वह आपसे क्यों-कर छीन लिया जायेगा ?

—मैं यह नहीं कहती; लेकिन मनोवैज्ञानिक रूप से उसके और मेरे 'अलगाव' की स्थितियां बनायी जा रही हैं'''कहा भी जा रहा है—जो खून के रिश्तों को तोड़ बैठी वह राष्ट्र को कैसे जोड़ पायेगी।

—इस मुद्दे पर आप और कुछ कहना चाहेंगी ?

—इतना ही कि और-और फ्रंट पर नाकामयाब होने पर विरोधी मुझे अपने ही घर में अपने ही बेटे से मात देने की अमानवीय हरकतें कर रहे हैं।

दूसरे दिन अखबारों में इस वक्तव्य के साथ-साथ दो अलग-अलग राजनीतिक दलों के झंडों के बीच स्वर्गीय नेता की तस्वीर छपी। एक अखबार में तो एक ऐसा कार्टून छपा जिसमें एक बूढ़ी औरत झुकी हुई आगे बढ़ रही है—सामने उसकी अपनी पार्टी का झंडा रखा है और उसकी सड़की चार-पांच साल का एक लड़का थामे है। बगल में एक युवा नारी अपनी पार्टी का झंडा थामे अकेली खड़ी दोनों को ठगी-सी देख रही है।

अखबारों, रेडियो आदि पर 'झंडे वाली बात' ने इतना तूल पकड़ा कि आरोपित विपक्ष ने अपने बड़े नेतृत्व के हवाले से प्रत्युत्तर में यह बयान जारी कर दिया कि संबद्ध पक्ष ने पहले भारत के अपहरण की अफवाह को अखबारों में उछाला और अब 'खून के रिश्ते' और मानवीय-नेह-दुलार-महत्वाकांक्षा प्रेरित गंदी राजनीति से मानकर एक मासूम बच्चे के सहज-व्यवहार को स्वार्थ-सिद्धि का साधन बनाया जा रहा है। हमें अपनी सफाई

मे और कुछ नही कहना है बस इतना ही कि नयी पार्टी के अलमबरदार इस बच्चे से ही पत्रकारो की भेंट करवा दें तो दूध का दूध और पानी का पानी सामने आ जायेगा।

इस बयान के जारी होते ही पत्रकार भारत से मिलने के लिए इतने उतावले हो गये। जनतन्त्र-नैतिकता और सत्य की दुहाई देकर सम्पादकीय लिखे गये कि आरोप लगाने वाला दल भारत का अखबार वालों से आमना-सामना करवाने के लिए रजामद हो गया।

दूसरे दिन लोगों ने पढ़ा-सुना—पाच साल के बच्चे की प्रेस-कान्फ्रेस। अजीब समा था। देश की राजधानी का बड़ा 'ज्ञान-भवन' खबर-नवीसों और दूसरे मीडिया वालों से खचाखच भरा था। माइक-स्टेड के पीछे रखी कुर्सी पर एक बालक खडा अपने आसपास झुके-खड़े फोटो-ग्राफर्स को अजूबे की निगाह के देख रहा था। स्कूल मे उसके कई-कई फोटो खीचे गये थे पर आज की बात कुछ और ही थी। पहले तो वह थोडा अचकचाया, थोडी दूर अपनी 'आया' को खडा देखकर वह संभला। जब उसने अपनी 'आया' से यह सुना कि—शाबाश, कॉलगोनेट भारत बाबा शाबाश। अब अकल लोग जो बात पूछें उसका सही-सही जवाब देते चलो, ठीक, बस रेडी !

—एकदम रेडी। उसमे अब चुहल जागने लगी थी।

—गुड इवनिंग भारत। तुम एक बहादुर बालक हो। एक बुजुर्ग पत्रकार ने शुरूआत करते हुए आगे कुछ कहना चाहा उसके पहले ही वह बोल उठा।

—गुड इवनिंग टू ऑल रेस्पेक्टेड अकल्स। मै बहादुर बच्चा हू तो क्या ! मेरे पापा भी बहादुर थे, ममी भी बहादुर है और ग्रैंड मा भी।

—ओह ! गुड, भारत ! आप यह बतायेंगे कि आपको अपनी फेमिली मे सबसे अच्छा कौन लगा है ?

—पापा, वो नही हैं, फिर भी अच्छे लगते है—ममी अच्छी है और ग्रैंड मा भी।

—आप ग्रैंड मा के पास कब गये थे ?

—पहले संडे-संडे जाते थे, इधर कई दिनों से नही गये।

—क्यों भाई ?

—इधर हम काफी 'बीजी' है।

—काहे मे ऐसे 'बीजी' हो गये ?

—हमारे टेस्ट जो सर पर हैं। क्लास मे हमारी पहली 'रैंक' बनती है।

—भाई ! हो तो छोटे पर बातें बड़ी करते हो।

—बड़े होकर 'बड़ा आदमी' जो बनना है।

—वाह ! खूब-अच्छा जरा बताइये तो, ग्रेंड मा से आपकी टेलिफोन पर बात हुई थी ?

—हां, हुई थी। क्रिसमस पर।

—पहले आपने बात की थी या उन्होंने ?

—बात तो पहले ग्रेंड मा ने की थी।

—पहले टेलिफोन किसने किया था ?

—पहले फोन हमने किया था।

—फोन नम्बर ?

—बड़े आसान हैं, आपको भी अभी याद हो जायेंगे। वन-टू-थ्री-थ्री-टू-वन्। एक-दो-तीन सुलट तीन-दो-एक उलट। उलट-सुलट की बात सुनकर सब खिलखिला पड़े।

—पर आप यह सब मुझसे पूछ क्यो रहे हैं ? उसने अपनी आया की तरफ देखकर पूछा। आया कुछ कहती उसके पहले ही मंजे हुए पत्रकार ने जवाब दिया—

—इसलिए कि भारत बाबा को आगे चलकर बडा आदमी बनना है। हम देखना चाहते हैं कि भारत अपने से बड़े के सवालो का जवाब देते हुए झेंपता तो नही—सच बात कहने मे हिचकता तो नही ?

—अच्छा ! यह बात है तो पूछिये।

—ग्रेंड मा से आपकी क्या बात हुई ? दूसरा स्वर था।

—ग्रेंड मा से हमारी क्या बात हुई, यह हम आपको क्यों बतायें ? हमारी प्राइवेट बात हम किसी को नही बताते।

—सुनकर माहौल मे थोडी देर के लिए खामोशी तैर आयी। तभी एक सधे हुए खबर-नवीस ने टूटा तार जोड़ा—

—अच्छा ठीक मत बताइये अपनी और ग्रेंड मा की प्राइवेट बात; पर वह बात तो बताओ जो उन्होंने तुम्हारे घर, ममी, और पापा के बारे में कही।

—हा, वो तो ठीक। पर ग्रेंड मा तो ममी-पापा की बात ही नही करती। हम पापा का कभी नाम भी लेते हैं तो चुप हो जाती हैं।

—और ममी के बारे मे क्या कहती है ?

—कहती हैं ममी का कहा माना करो···और क्या···अकलजी जरा अपना चश्मा हमें दीजिए फिर आगे बतायेंगे। उसने अपने सामने वाली कुर्सी पर बैठे सज्जन से कहा और हाथ आगे बढ़ाया। और जब चश्मा हाथ मे आ गया तो बोला—ग्रेंड मा चश्मा लगाकर बात करती हैं। वह रुका और अपनी बादाम-सी नाक पर चश्मा टिकाकर बोला—ग्रेंड मा ने प्रेजेंट तो भेजा हमारे बर्थ-डे पर लेकिन खुद नही आयी। हमने उन्हें कोंचा तो सॉरी-सॉरी करने लगी। फिर हमने याद दिलाया तो हमारे चुम्मी करने लगीं फोन पर ही—यू चश्मा हटाकर। उसने अपनी नन्ही नाक पर खिसकते चश्मे को हटाते हुए कहा।

—फोन पर आपने कैसे देखा कि वह चश्मा हटाकर आपको चुम्मी दे रही हैं ?

—देखा नही तो क्या, समझा तो।

—फिर क्या ?

—फिर; हमने उनसे एक की जगह दो चुम्मी ली।

—और आगे ?

—और आगे। सब प्राइवेट।

—अच्छा, छोड़िये। आप अपनी ममी की पार्टी का नाम जानते हैं ?

—हां, जानते हैं। इसका झडा भी पहचानते हैं।

—और ग्रेंड मा की पार्टी का भी, उसे भी जानते हैं ?

—हां, उसे भी अच्छी तरह जानते हैं।

—तो बताओ भला। आप किसकी पार्टी को पसद करते हैं—उसने सुना और उसकी चहक छू हो गयी। चेहरे का रग फीका हो गया और वह चुप रह गया।

—हां-हां, बताइये भला आपकी पार्टी कौन-सी है ? ढाढस बंधाते से बोल आये।

—हमारी पार्टी ! वह संभला।

—हां-हां, आपकी पार्टी कौन-सी है ?

—मेरी पार्टी। वर्थ-डे पार्टी—वह एकदम कह गया।

—वर्थ-डे पार्टी ! सवाल पूछने वालों की आंखें खुली की खुली रह गयी।

—'वर्थ-डे पार्टी' हां जिसमें सभी शामिल हों ममी भी, पापा भी और ग्रैंड मा भी···आया भी।

—और ?

—और आप सभी। इतना कहकर उसने अपनी आंखों पर चढ़ा बड़ा चश्मा उतारकर लौटा दिया और खुद भी नीचे उतर आया।

कांटों नहाई ओस

कैसे दिन थे ! कच्ची अमिया से लुभावने तो कभी रस भरे आम-से मन-भाते तो कभी लोनी-से मुलायम और सोंधे । उजाला अच्छा लगता, अंधेरा आंख-मिचौनी के खेल का इशारा होता, आंगन में चहकती चिड़िया अपनी सगी थी तो मुंडेर पर बोलने वाला कौआ सन्देसा देता हितुमीत ।

—मां-मा, मुंडेर पर कौआ बोला ! मामा आएंगे ! रमजू के मामा तो आ भी गये । खील-पतासे, गैंद-कंचे और न जाने क्या-क्या लाए ! सूरज के चिलके में रख, कांच की आंख से उसने उजली अनोखी फोटू वाली डिबिया हमें भी दिखाई । रंग-बिरंगे नाचते-गाते लोग-लुगाई सब···मां ! हमारे मामा क्यों नहीं आते ?

मां उसांस लेकर कहती—नहीं, मामा से तो काना मामा भला, पर तुम नसीब मारों के तो दो-दो मामा हैं, दोनों काने भी हैं, पर···दोनों एक के बराबर भी नहीं ।

मैंने जरा होश सम्भाला तो जाना, मां का मायका उजाड़ है । न उसके मां, न बाप ! अब तो उसकी नई मां भी नहीं रही । पर नई मां से दो-दो भाई हैं—दोनों के एक-एक आंख नहीं है । उन्होंने जब एक-दूसरे को ही फूटी आंख नहीं देखा, तब भला पराई कोख की बहन, मेरी मां, को वे कैसे और क्यों लखते-चाहते ?

यूं नैहर की चाह-राह, आस-बिसास और हुमक-हुलास हर बेटी, ब्याही-बिन-ब्याही, के मन में होती है, पर मां थी कि अपने बाबुल के घर के सन्नाटे को सदा आंखों में बसाए, हिए में रमाए रहती ! नैहर का उजाड़-पन उसे जब-तब रुला जाता । मुहल्ले की किसी बहन-बेटी के यहां उसके भाई-बाप आए हैं, गोद गदराने पर पीलिया-भात या अंगिया-दुपट्टा लाए हैं, मां सुनकर हिरा जाती । उसकी पलक-पांख भीग जातीं । वह मुझे कांख-

आंख में भरकर खूब-खूब चुपके आंसू रो लेती । अब्बा आते और मां को यू हारा-हिरासा देखते तो, मुझसे पूछ लेते—बिटवे ! आज फिर पड़ोस में किसी हुसना-हलीमा के यहां उसके बाप-भाई आए लगे हैं ! और मां की पलकों पर तुले हुए आसू उसके गालों पर ढलक कर जैसे अब्बा की बात की हामी भर देते ।

—अब भई, मायके वाले जब जो करें, जुटाएं, वो सब भी तो तेरे हेन आ ही जावे है, फिर यू थोड़ा-थोड़ा होने, हारने-हिराने से क्या तो बने ? फिर नवलराम काका के रहते तू अपने मैहर को जीता-जागता न माने तो तेरे जैसा ओछा मन किसका ? अब्बू कहते ।

ऊंच-नीच, अपना-पराया, सगे-सम्बन्धी जैसे रिश्ते-नातों की कुछ परख जब से मेरे नन्ही समझ जागी, तभी से जाना की अब्बा नए भाई-बहन के आने पर वे सब लाते-सजोते रहे, जो ऐसे मौकों पर मायके से भाई-भौजाई या फिर मां-बाप लाते हैं ।

माथा नहा कर मा उजले अगना कुनकुनी धूप मे बैठी बाल सुखाती थी के मनिहार आन बोला—भौजी, लो पसन्द कर लो चूड़ियां ! वैसे मुंसीजी ने खुद पसन्द करके तो पहुंचाए ही हैं, तुम अपने मन भाते और चुन लो !

रगरेजिन तभी आयी और रंग-राते लिहाज में बोली—मुसानी आपा, लो सहज लो, पीलिया-पाट । मुंसीजी ने खुद अपनी चाह से चुनकर ये रेसम की ऊंची जात के अच्छे नमूने भिजवाए हैं ।

रहीमन खाला आई । कह गई—ये सितारो जड़ी मखमली जोड़ियां खूब फबेंगी तुझे बेटी । मैंने अपने हाथो इन पर काम किया है । सच्चे सितारे मुंसीजी ने दिलवाए थे···भई, लुगाई जनम-जमारा तो उसका जिसके नसीब मे मुसीजी जैसा खावद-सुहाग बदा । दाई मा हामी भरती और बर्तन मलती जुम्मी वाह-वाह करती । मां सब सुनती, निहाल होती और फिर गुमसुम हो डूब जाती ।

मां अपनी गोदी में नन्हे ललने को सहेजे अपने पीले परहन को सहेजते-सवारते खड़ी हुई कि तभी तुफैलन खाला ने भी अपने जाए को कोख में भरा, माथे पर ठहरे आंचल को पहले नीचे सरकाया, फिर उसे सम्भालते हुए बोली—मुंसानी आपा ! अबके तेरे पीहर वालो ने सुध ली तेरी,

पीलिया तो चोखा लाए खूब खिली-फूली लगे है तू इसमे ।

—जे पीलिया, पीहर का नही समुराल का है।

—मुसीजी खुद लाए हैं, अपनी का मन मान रखने के लिए। पड़ोस की बिस्सो बुआ बोली ।

—वाह ! उल्टे बास बरेली ! भई अपने घर-भरद का लाख ओढ-पहन लो, पर पीहर की लीर-चीर से जिए में जो हुमक-हुमक जागे वो कहा ! दूर रिश्ते की देवरानी ने मार की और अपने भाई के हाथों ओढाए पीलिए की सहेज ऐसे होठ हिलाए के मा को लगा वे बिना लीर-चीर के उघडी, बेपर्दा पांच लुगाइयों के बीच खडी हैं।

ऐसे में, मां जहां होती वहा होकर भी नही होती । तभी किसी ने कह दिया—भाई भाई होवे, भरतार भाई का बान लेता कोई अच्छा लगे। और सब हंस पड़ती । फिर तो मा का वहा खड़ा रह पाना अचम्भा होता । मा ने, आगे पांच लुगाइयों के जुड़ने पर उनके बीच पीलिया ओढकर जाना छोड़ दिया, तो अब्बा को अखरा । जोर देते—वो ही पहन जो छुटके के जनम पर आया था । मां कैसे समझाती उन्हें । हार जाती और फिर लुगाइयों की भाई-भरतार के बदल की बात सोच, छोटी-छोटी और गुमसुम हो रहती । डबडबाई आख-पांख लिए, सहारा लखती और उसे तभी वह मिल गया, जिसकी चाह में हारी हिरसाई थी ।

'नवला नाना' आए थे मा के मायके से । गांव से शहर, तिलहन-कपास बेचने । छुटके को गोद मे बिठाकर और मेरे माथे पर हाथ फेरते हुए नेह-निहाल नजर से उन्होंने मा को निहारा और होले से बोले थे—गट्टू बेटी ! मेरे भाग बेटी नही बदी, पर तू जाने, तुझे याद करके तेरे कने आकर, मुझे नी लगे कि मेरे कोई बेटी नी । तू जाने, तेरे 'अलमू' का नाना और मैं गांव मे एक दूजे की छांई-परछाई बन के रहे-बढे । तेरी मां ने तो राखी बाधी थी, इस बिन बहना के भाई की सूनी कलाई पे । सच्च गट्टू, तेरी बाड़ी को फला-फूला देख मुझे लगे के जैसे मेरा खेत हरिया गया, मेरी अपनी बेटी के आचल की बेल मे फूल ही फूल भर गए ।

—काका ! तुम्हारे जी-जान मे मेरे पीहर की जोत जगी लगे मुझे। तुम मेरे घर-आंगन आकर गट्टू की टेर लगाओ तो मुझे लगे जैसे सात

परिवार मेरे आगे हैं, मुझे पुकारे हैं। तुम्हारे अंगोछे से मेरे पीहर के छोर बंधे हैं, जीते हैं, काका···पे तुम छठे-चौमासे ही सूरत दिखाओ हो।

मा की आंख में पानी होता और नवल काका अपने अंगोछे को अपनी आंखों से लगाते।

मा उधर अपने को साधती, इधर नवल नाना भी अपने को सम्भालते।

—नानाजी के पैर छुओ, सलाम करो इन्हें, आते ही बस चढ गए सिर उतरो नीचे। मां हमें छुई-मुई-सा हटियाती। पैर छूने की बात हमें अटपटी लगती। मैं गोद में उतरकर 'सलाम नानाजी' कहता और मुनिया 'छलाम' कहकर अपनी नन्ही हथेली अपनी आंख-पांख पर रखकर मां की छाती में मुंह गडा लेती।

नवल नाना के अंगोछे के छोर में खांड-चने बंधे होते और वे हमारे सामने गांठ खोल देते। दो मुट्ठी खाड-डूबे चनों में मा न जाने क्या देखती और झट उन्हें अपने आंचल के छोर में सहज लेती। फिर हमें चुटकी-चुटकी भर यूं देती जैसे अमरित बूंद बांट रही हो या अजमेर वाले ख्वाजाजी का तबर्रुक—गट्टू ! ले ये तेरे लिए पोलिया लाया हूं—इस बार तिल के चोखे दाम पट गए। ले, रख ले इसे, और तो क्या बना है तेरे इस बूढ़े काका से, अब वो बेटे तो···बस। वह बोलते।—काका क्यों जतन-जाल में डालो हो तुम अपने को, तुम्हारे खाड चनों में जो अमरित भरा है वो भला लूगड़े-लीतर में कहा ? ये सब क्यू करो हो मेरी खातिर। मा कहती।

—नी रे बेटी ! तू बहू-बेटों की मत सोच, आखिर तो खेत-कुएं मेरे बनाए-चुनाए है। क्या तीन फसलों में मेरा इतना हक भी नी के मन का कुछ कर-धर सकूं। और नहीं तो अपने नेह-नाते की बेटी हेत एक चीर-चोला भर जुटा सकूं···

—पाहुने तो अब न जाने कब आएं। उनका इशारा अब्बू के लिए होता है। 'मेरे आसीस बोलियो उन्हें। तो चलूं, सुआ-मैना में।' अब, उन्होंने हम भाई-बहनों के गालों को सहलाकर कहा—काका ! सोचा, कभी के तुम मेरे यहा का पानी तक नी चखो और मैं मैं···

—अब गट्टू, तू अनजान बने तो तू जान। भला बेटी के घर पीवे है

पानी कोई बाप ? तेरा बाप जीता तो पी लेता तेरे घर का पानी ? उसमे मुझमें फरक करे है तू बेटी ?

—नी-नी वो बात नी काका—ये टावर-टसूए पूछे है" नानाजी अपने खाए नी, पानी भी नी पीवें…वो हिन्दू हैं और हम…

—छुटको रे छुटको ! नेम-धरम तो पालू हू…पर तुम्हारी मां की और मेरी रगों मे एक ही कुएं का पानी रगत बन दौड़ें है। कहते-कहते वह हमे खीचकर फिर बांहों में भर लेते और आख-पलक चूम कर खड़े हो जाते।

—तो गट्टू गाड़ी को टेम हो गया ! चलू बेटी। मां उठ खड़ी होती, आचल माथे से आखों पर खिसक आता। नवल नानाजी सिर पर हाथ फेरते और खनकता-रुपया मां के हाथ पर रखकर मुड जाते, तेज-तेज कदमों से।

मा आगन पार कर दरवाजे तक जाती। फिर पट की ओट ले, उन्हे जाता हुआ देखती ! नवल नाना थोड़ा दूर जाकर पीछे मड कर देखते। मां होले से पट हिलाती और तब तक वहा खड़ी रहती, जब तक नानाजी आखों से ओझल नही हो जाते।

मां का हिया मक्खन का बना था। ऐसा ही था उसका हिया-जिया, चुटकी भर चुभन से, थोडी-सी आंच से, पिघल जाता। अपनी मा का उसन मुह नहीं देखा था। बाप के होने का भान हुआ तो हाथ पीले कर नई मा न कच्ची उम्र मे ससुरजी के देहली-द्वार दिखा दिए। फिर बाबुल की चौखट पर तभी चढ़ी जब बाप का मरा मुंह देखने का सन्देसा आया। बाप की मिट्टी को पार लगाकर लौटी तो आगे फिर कब मायके जा पाई। फिर तो अब्बा ही भाई का नेम निवाह कर उसकी मायके की चाह को सहलाते रहे। आगे नवल नानाजी मे अपना मायका जिला कर उसन अपने सूने मन-गगन को चांद तारों से भर लिया, नवल नाना के नेह, लाड मे उसने बाप-भाई का, मां तक का, आस-बिसास पा लिया।

मां ने अपनी जिन्दगी को काटे पर ठहरी ओस की बूदो के रूप मे ही

जिया। उसकी ओस-ओस जिन्दगी कांटो नहाई-सी रही। फिर भला ओस काटे पर कब तक टिकती ! हवा का एक झोंका आया कि···

नवल नाना के लाए पीलिए को पहन मां आंगन में अपने बेटे की पांचवी हसली उतरवा कर हुलस रही थी कि सुना—मुंसीजी नई मुसानी ला रहे, सब तय-तैयार है। कहने वाली ने होले-से कहा था फिर इस सुर मे कि चार हाथ दूर खडी मां सुन ले। मां ने सुना-समझा, गूना-गूंथा और उझककर बुझ गयी। जो आदमी इतना रीझा था, मां पर के ससुराल को उसके खातिर मायके-जैसा बनाने की हौंस उसने दिखाई थी, वह मां के रहते, सिर पर सौत लाएगा—इसकी भनक मा तो क्या हम बच्चों तक को आई थी, कि अब्बू नई मा ला रहे हैं पर···

—देखो, मैं मर जाऊं तो एक भलाई और कर देना···एक दिन मां ने अब्बा को कह ही दिया।

—मरने की घडी कैसे आ गयी, मैं भी तो सुनूं ! अब्बा ने मां की बात को झेला दिया।

—हां, सुन ही लो, मेरे जनाजे को पहले कंधा तुम लगाना। गहवारे के दूजे सिरे पे मेरा बेटा, तीसरे पर मेरे दो भाई और चौथे पे नवल काका। बस, मैं यूं अपनों के कन्धो चढ़कर इस घर से निकलना चाहूंगी, सुहाग भरी-मान भरी !

—अरे तू तो अच्छी भली है ! ये जीने-मरने की क्या सूझ पड़ी तुझे ?

—मैं अच्छी हू, पर मेरे भीतर का सब टूट गया है। लगे हैं जैसे मैं बोदे कपड़े के बारीक छोर पर चल रही हू। हा, मेरे जनाजे पर वो पीलिया जरूर डालना, वो ही, जो नवल काका लाए, सबसे ऊपर। और मां बीमार हो गयी। बीमारी भी अजानी अनसुनी—चुपकी बीमारी, गहरी चुप्पी की बीमारी। मां का बोलना कम हुआ। अब वह कभी-कभार ही हम भाई-बहनों से बोलती। आगे तो हमसे भी बोलना बन्द हो गया।

तभी, उन्हीं दिनों डाकिया मुनिया के हाथ में कोना कटा पोस्ट-कार्ड थमा गया। मुझसे पढ़ने के लिए मा ने आंख-पलक से इशारा किया। मैंने पढा—नवल काका सरग सिधारे, हमने धीरज धरा, तुम भी सह लेना। मां ने सुना। वह हिली न डुली—जैसी खाट मे थी वैसे ही जस की तस,

गुम बेहिल पड़ी रही। उसकी आंख-पलक दरवाजा देखती रही। दिनों का आवा-जावा लगा। हवा के हलके हिलोरे आए और कांटो पर ठहरी ओस बूंद कपकंपाकर रह गयी। दिन-दिन सूखती-लरजती। अब्बा ने, जो मां की हालत देखी तो भीतर ही भीतर कही सहम गए। एक दिन उसकी खटिया से टिककर बोले—किसी का क्या कुछ कहा सुन-गुन लिया तूने, जो यू साल रही अपने जी-जान को···क्या कमी रही तुझे ? क्या कुछ नही मिला, इस घर से तुझे ?

—खूब-खूब दिया तुमने···बड़ा मन-मान रखा तुमने मेरा···मायके की आस-बिसास से रीते इस हतभागन के हेत इतना अपनापन उड़ेला कि मेरा आचल झूल के चिर-चिरा गया···मैं क्या दे पाई, तुम्हे ?···मैं अब क्या दूं तुम्हे,···लो मैं तुम्हें तुम्हारी चहेती जिनगानी ही दे दू···खुद को तुम्हारे रास्ते से हटा लू। मा के आसू भरे बोल थे टूटे-फूटे।

—बहक क्यों रही ? अभी हुआ ही क्या है ? तू इस घर में रह-बस। तुझे कभी कोई कुछ कहने वाला नही यहा।—अब्बा ने मा को तसल्ली-सी देते हुए कहा। पर मा···

नई मा आयी तो नही, पर मां आने वाली की राह को अपनी सासो से बुहारकर, आंसुओं से निखारकर, अब्बा को उनकी मनचाही जिनगानी देने के लिए उनके रास्ते से हट गयी। और यू कांटो-नहाई ओस एक दिन ढुलक ही तो पड़ी मिट्टी मे !

□□